शंख-सिन्दूर

बांग्ला देश की एक लोकप्रिय
गीति-गाथा पर आधारित
मार्मिक कथा

शंख-सिन्दूर

डा० रमानाथ त्रिपाठी

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

कानने कुसुम तोडसि काहे गोरि ।
कुसुमहिं निरमित सब तनु तोरि ।।

(गोरी, उपवन मे फूल क्यों तोड रही हो। तुम्हारा (तो) सारा शरीर ही फूल से बना है ।)

गोविन्ददास का यह ब्रजबुलि-पद आज जयचन्द्र को बार-बार याद आ रहा था ।

फूल-सी सुन्दर गोरी कन्या से उसकी अकस्मात् भेंट हो गई थी । वह कन्या इस भेंट को भूल भी गई थी और अपने प्यारे बछडे लच्छू से खेल रही थी ।

नहीं भूल सका था जयचन्द्र । वह सन्ध्या के समय एक बार फिर फूलेश्वरी नदी पार कर पातुआरी गाव आ गया था ।

चौखूटी पोखरी लबालब जल से भरी थी । लाल कमल के फूल लहरा रहे थे । टटके कमल फूलो मे जो पवित्रता है, वही उस कन्या के पतले ओठो पर है । कमल के चौडे-चौडे पत्तो पर पारा-सी चंचल और मोती-सी स्वच्छ-उज्ज्वल जो बूदे थिरक रही है, वैसी ही तो है उसकी शुभ्र दन्त-पंक्ति ।

पोखरी के चारों ओर अनेक फूलो के पेड खड़े थे । वह आज भी तड़के भोर फूल तोड़ने आ गया था । उसने आते ही हरसिंगार की डाल इतने ज़ोर से मचमचा दी कि ढेर सारे फूल खीलो जैसे बिखर गए । उसने चम्पा की डाल इतने ज़ोर से झटक दी कि वह जड से ही उखड़ गई । नागेश्वर, रक्तजवा, मल्लिका, मालती, अपराजिता आदि के वृक्ष और लताओं को तोडता-झटकता वह बन्दर-सा उत्पात मचा रहा था । वह रंग-बिरंगे फूलों को रौंदता इधर-उधर दौड़ा फिर रहा था ।

"कुकूऽकुक्क, कुकूऽकुक्क"

किसी डाल पर बैठी पिड़की कूक उठी । यह दुष्ट किशोर भी मुट्ठी

बाध अपने जुडे हुए अगूठो मे फूक मारते हुए पिडकी के स्वर का अनु-
करण करने लगा ।

"कौन हो तुम ?"

जयचन्द्र ने चौककर देखा तो देखता ही रह गया । इकहरे शरीर की कन्या उसकी ओर बडी-बडी अखियो से देख रही थी । उसकी नाक तिल-फूल जैसी थी । लम्बे भीगे केश पीठ पर फैले थे ।

कन्या के कण्ठ मे तीखापन था, किन्तु मधुरता और गंभीरता मे कमी नही थी ।

"कुछ दिनो से देखती हू कि इस वाटिका के फूल और शाखाए नष्ट कर दिए जाते है । क्या तुम्ही तोड जाते हो ? कहा रहते हो तुम ?"

"नदी के उस पार के गाव मे ।"

"सुन्धा गांव मे ?"

"हा—हा—" किशोर हकला गया । चारो ओर टूटी पडी डालिया और बिखरे फूल उसकी उद्दडता के साक्षी बन गए । वह घोर आत्म-ग्लानि का अनुभव करने लगा । क्यो उसने ऐसा किया ? उसे क्या हो गया था कि बन्दर की तरह उत्पात करता रहा ?

"मै तो अपने बाबा की पूजा के लिए फूल तोडती हू, तुम किसलिए तोडते हो ?"

"यों ही तोडता हू । मुझे फूल अच्छे लगते है ।"

"तुम्हारे बाबा रोकते नहीं ? यहा इस गाव मे उपद्रव करने आ जाते हो ।"

"मेरे मां-बाप, भाई-बहन कोई नही है ।"

"कोई नही ?"

"न ! अपने मामा के यहा रहता हू । अब मैं फूल नष्ट नही करूगा । क्या मैं यहा नित्य आ सकता हूं ?"

कन्या ने आखे झपकाकर स्वीकृति दे दी । अभी किशोर के मन से हीनता की भावना दूर नही हुई थी, किन्तु वह मैत्री करना चाहता था । उसने अनुनय-भरे स्वर मे पूछा :

"क्या तुम नित्य मेरे लिए एक माला गूथ दिया करोगी ?"

कन्या ने पुनः स्वीकृति दे दी ।

"तुम्हारा नाम ?"

"चन्द्रावती । और तुम्हारा ?"

"जयचन्द्र ।"

इसी चन्द्रावती को लक्ष्य कर जयचन्द्र बार-बार स्मरण कर रहा था—कानने कुसुम तोड़सि काहे गोरि···और इसीसे मिलने की आतुर आकाक्षा लेकर वह नदी पार कर आ गया था ।

चन्द्रावती कदम्ब वृक्ष के नीचे खडी थी । पास से निकलने वाली कैवर्त्त, सद्गोप, माझी, बाग्दी आदि जाति की स्त्रिया उसे दीदी मोनी[१] कहकर 'पेन्नाम' करती, तो ये किशोरी दीदी मोनी बुरी तरह झेप जाती ।

तब तक आ गई कैवर्त्त-वधू मालो ।

"दीदी मोनी ।"[१]

"मालो बौदी,[२] तुम मुझे दीदी क्यो कहती हो ? बेनू दादा तो मुझसे बड़े है ।"

मालो नाक पर हाथ रखकर बोली, "हाय राम, बांभन-कन्या को नाम लेकर पुकारूं ? जानती हो, वे तुम्हारे बारे में क्या कहते हैं ?"

"क्या कहते है ?" चन्द्रा अपने भोलेपन मे दूधिया हसी बिखेर गई ।

"कहते है, दीदी मोनी तो मानो क्वारी पार्वती है, जो कैलास से भटककर हमारे पातुआरी गाव मे आ गई है ।"

मालो की दन्तपंक्ति चन्द्रा को बडी प्यारी लगती थी । प्राय. हसते रहने का उसका स्वभाव बन गया था । वैसे मालो बडी भोली और निष्कपट थी । उसके हृदय का भोलापन उसकी गहरी काली आखों मे भी समाया हुआ था । उसकी आखे भी सदैव हसती रहती थी ।

"बौदी, किसी काम से आई हो ?"

"तुम्हारे दादा की आंख मे पीर है । सिज गाछ[३] का पत्ता

१ दीदी मोनी—दीदी मणि—बडी बहिन का आदरपूर्वक सम्बोधन ।

२ बौदी—बहूदीदी—भाभी ।

३. सिज गाछ—सेंहुड़ । इसे पूर्वबग मे सिजगाछ और पश्चिम बग मे मनसा गाछ कहते है ।

चाहिए।"

"चलो दे दू।"

सिज गाछ के नीचे सर्पो की देवी मनसा का घट स्थापित था। यह पेड चन्द्रा के पितामह ने रोपा था। उनसे सपने मे मनसा देवी ने घट-स्थापना के लिए कहा था।

कुम्हार से विशेष घट बनवाया गया था, जिसपर अष्ट नागो के फन उठे हुए थे। घट को नदी मे डुबोया गया। तत्पश्चात् प्रथा के अनुसार मालो के ससुर गनेश कैवर्त्त ने घडा नदी से निकालकर सिज के पेड के नीचे स्थापित किया।

चन्द्रा ने पत्तिया तोड़कर दे दी।

"बा आ आ।"

बछडे के स्वर को दुहराती चन्द्रा बोली, "बा आ, मेरे लच्छू को भुक्खी लगी है?"

यह बछड़ा चन्द्रा को वहुत प्यारा था। चन्द्रा के पिता पंडित वंशीदास जगल के रास्ते जा रहे थे, वहा बाघ के द्वारा खाई गई गाय के पास दो दिन का बछडा खडा रभाता मिला था। पता नही यह कैसे बच गया था। पडितजी इसे कधे पर उठा लाए थे। चन्द्रा ने इसे फाहे (रुई) से दूध पिलाकर पाल लिया था। पंडितजी के बछड़े के लिए किसानों की गृहिणिया दूध दे जाया करती थी।

चन्द्रा ने हरी-हरी दूब के दो-चार कौर खिलाए ही थे कि ठिठकता हुआ जयचन्द्र उसके सामने आ खडा हुआ।

"अरे तुम?"

"क्या करूं! मुझे कुछ अच्छा नही लगता। तुम्हारे पास चला आया।"

"क्या तुम्हारे कोई मित्र नही है?"

"कोई नही।"

"क्या मामा के बच्चे भी नही?"

"वे तो बहुत छोटे है। क्या मैं तुम्हारे पास न आया करूं?"

चन्द्रा की आखो मे व्यथा तैर आई : "तुम रोज आया करो ।"

चन्द्रा की मा ने भी जयचन्द्र का स्वागत किया । उसे कटहल-काठ की पीढी पर बिठाकर खाने के लिए बिन्नी धान की खीलें और बतासे दिए ।

बहुत-से पेडो ने पत्ते गिरा दिए थे । वे नंगी डालो की बाहे आकाश की ओर ताने खडे थे । किसी-किसी पेड पर रखा घोसला दूर से भी साफ दिखाई दे रहा था । नीम के पेड पर नई कोपलें इस प्रकार हिल रही थीं, मानो चिडियो के बच्चो के नये-नये बहुरंगी पख हो । पीपल में कोपले कुछ पहले आ गई थी, अत: वे अपनी रक्ताभा छोडकर गहरी हरी हो गई थी ।

धूप मे थोडी-सी गरमी आ गई थी । हवा भी कुछ गुनगुनी हो गई थी । उसका स्पर्श गालो की लालिमा गहराता प्रतीत हो रहा था।

जयचन्द्र के तन के पोर-पोर मे कोपले फूट पडी थी । पता नही कैसी एक बेचैनी, कैसी एक आधी उसके मन मे भर गई थी ।

चन्द्रा के सामने वह अत्यन्त शिष्टता के साथ आता । वह और भी अधिक स्वच्छ रहने लगा । अपनी भाषा को अधिक से अधिक मार्जित करने की चेष्टा करता । 'मेघदूत' और 'गीत-गोविन्द' का पाठ अब और अधिक रुचि के साथ करता ।

वशीदास इन दोनो को रघुवंश पढाया करते थे । आज दशमसर्ग समाप्त हो गया था, वे किसीकी जन्मपत्री बनाने के लिए उठ गए ।

"चन्द्रा, बुलबुलो के बच्चे अब बडे हो गए होगे । वे उन्हें उडना सिखाने वाले हैं । तुम बच्चे पालोगी ? चलो पकड़ दू ।"

चन्द्रा प्रसन्न होकर चल दी । दोपहर-भर दोनो पेडो के नीचे चक्कर लगाते रहे । बुलबुल के बच्चो को पकडना भूलकर दोनो आमो के नीचे पहुचकर अबिया एकत्र करने लगे । चन्द्रा अंचल मे नमक बाध लाई थी । वह जब अबिया खाती तो खटास के कारण सांस ऊपर खीचती, उसकी पलकें तितलियो के चचल पखो-सी फडफडा जाती । जयचन्द्र बड़े ध्यान से उसकी यह मुद्रा देखता ।

दोपहर के सन्नाटे मे किसी पक्षी का मीठा स्वर गूज उठा। पीले रग की गरदन और हरे रग के सिर वाला एक पक्षी प्रमुदित होकर चहक रहा था। चन्द्रा मुग्धभाव से उसे देख रही थी। जयचन्द्र ने बताया, "यह हरियल पक्षी है और गर्मी मे गूलर के फल खाने आता है।"

झुड की झुड लाल कलियां अनार के वृक्षो पर छा गई थी। तीन-चार अगुल की नन्ही-मुन्नी चिडिया फुदक-फुदककर इन फूलो मे कुछ खोज रही थी। चन्द्रा चकित होकर इन्हे देखती, और जयचन्द्र देखता रह जाता अनारकलियो जैसे चन्द्रा के लाल-लाल ओठ।

चन्द्रा आगे-आगे चलती। मक्खन-से कोमल और कमल-पंखुडी-से उसके लाल चरण धूल पर पडते तो जयचन्द्र की इच्छा होती—इन चरणो को धोती से पोछ दे। चन्द्रा की लम्बी चोटी कमर से भी एक हाथ नीचे लटकती झूलती रहती। जयचन्द्र के मन मे होता इस चोटी को हाथ में लेकर सूघ ले।

वायु से विलोडित होकर बादलो का समूह आकाश मे भागा जा रहा था। दूर-दूर तक अछोर जलराशि लहरा रही थी। असख्य नावे एकत्र थी। मालो घुटने-भर जल मे जाकर बेनू की मयूरमुखी नाव के पास पहुंची। उसने सिन्दूर, धान और दूब से नौका-पूजन किया।

तट पर चन्द्रा भी खडी थी। मालो ने हसकर पूछा·

"आज तुम्हारा सखा कहा गया दीदी मोनी ?"

"जयचन्द्र ? वह या तो पके फलो से लदे तालो के नीचे घूम रहा होगा या कही वंशी बजा रहा होगा।"

पतवारो की बाहे लपकाते हुए नावे दौड पडी। तट पर खडे लोग उत्तेजित होकर हर्षध्वनि कर उठे।

आज आरंग[1] के समय चन्द्रा को जयचन्द्र की याद आ गई। कितना आनन्द आता यदि वह भी यहा होता। इस अथाह जलराशि को पारकर यहा तक नाव से आने की सुविधा जयचन्द्र को नही मिली होगी।

१. आरग—वर्षाऋतु में नौका-दौड़-प्रतियोगिता का उत्सव।

२

काजली के पीले फूल खिल गए, शरद् की दुपहरी ढल गई ।

चन्द्रा की दोनो भाभिया चावल साफकर उठने को थी । मा कृत्तिवासी रामायण पढ़ रही थी ।

वन मे राम के साथ जाती हुई सीता तीखी धूप में चलते-चलते अकुला उठी है .

हिंगुल मंडित तार पायेर अंगुलि ।
आतपे मिलाय जेनो ननीर पुत्तली ।।

(हिंगुल से रंजित सीता की श्वेत उंगलियो को देखकर लगता है कि कही धूप के कारण मक्खन की पुतलियो के समान पिघल न जाएं ।)

चन्द्रा के साथ कौडियो का खेल खेलते हुए जयचन्द्र उसकी उंगलिया देखने लगा । क्या कृत्तिवास ओझा ने ऐसी ही किसी किशोरी की उंगलिया देखकर सीता का वर्णन किया है ?

"केनाराम आ गया !"

चीत्कार सुनकर ये दोनो कौडिया छोडकर भाग खड़े हुए । बहुए और मा भी भागकर बासो के झुरमुट मे छिप गईं । रामायण के पृष्ठ फडफडाते रह गए । चावल यहा-वहा बिखरे पडे थे, मानो पक्षी भी उन्हे चुगना भूल गए । मानो हवा भी थम-सी गई ।

"केनाराम आ गया !"

गुल्ली-डंडा फेककर लडके थर-थर कापते हुए अपने-अपने घरों को भाग गए । नदी-घाट पर नहाती स्त्रिया वैसे ही गीले तन लस्त-पस्त गिरती-पडती भाग खडी हुईं । किसीकी लटे खुली हुई, किसीका पूरा वक्ष ही खुला हुआ । गायो को चारा देती महिलाएं चारा फेक अपने-अपने घरो मे अर्गला बन्द कर बैठ गईं ।

पुरुषो मे कोई जंगल की ओर भाग गया । कोई पेड़ो पर चढकर छिप गया । जिसे अपने बाल-बच्चो का मोह सताया, वह घर की ओर

दौड़ पडा।

चारो ओर कुहराम मच गया, "केनाराम आ गया!"

केनाराम?

हा केनाराम, नल-खागडा गढ का भयंकर डाकू।

जिसे केवल धन लूटने मे ही आनन्द नहीं आता। लोगो को तडपा-तडपाकर मारने मे जिसे अत्यन्त भीषण तृप्ति मिलती। अभी सप्ताह-दो सप्ताह पहले ही तो उसने पास के गाव पर डाका डाला था। गृह-स्वामी के हाथ जला दिए। घर मे कुछ था ही नही, गृहस्वामी धन कैसे बताता। केनाराम उसकी छाती पर चढ बैठा। पास ही उसकी जवान लडकी को खभे से बाध दिया, ताकि उसे पिता का वध दिखाया जा सके। केनाराम ने गृहस्वामी के गले पर धीरे से छुरी रखी, थोडा-सा खून छलछला आया।

"कैसा लगा रे?"

"महाराज, मुझे छोड दो। मैं लडकी की सौगन्ध खाता हू, मेरे पास सोना-रुपया कुछ नही है।"

"मुझे सोना नही चाहिए रे। मैं तो यह देखना चाहता हूं, तू कैसे तडप-तड़पकर मरता है।"

केनाराम ने जरा और गहराई के साथ छुरी रगडी, रक्त का फव्वारा निकल पडा। लडकी की चीख निकल गई। "खोल री आखे, नही तो तेरे भी पेट में छुरा भोक दूगा।" दूसरा डाकू बोला।

गृहस्वामी के कठ से गो-गो की विचित्र ध्वनि निकलने लगी। केनाराम उसे मुर्गी की तरह हलाल करता रहा। सिर काट भाले से बीधकर वह जोर से चिल्लाया "जय काली!" समस्त डाकुओ ने तुमुल स्वर मे दुहराया—"जय काली!" लड़की के बन्धन छोड दिए गए। वह अपने मृत पिता की रक्तरंजित देह पर कटे वृक्ष-सी गिरकर बेहोश हो गई।

अपने कपडो मे लगे खून की गन्ध से उन्मादक हर्ष का अनुभव करता हुआ केनाराम सदल-बल चला गया था।

तो यही केनाराम पातुआरी गाव आ गया था। कोई कह रहा था

कि उसके साथ पचास भयानक डाकू हैं, जो लम्बे-लम्बे बरछे और चमकती तलवारे लिए है ।

"जय-जय काली" का भयंकर जयघोष निकट ही बार-बार सुनाई पड रहा था । काव-काव करते ढेर सारे कौए आकाश मे छा गए । धीरे-धीरे "जय-जय काली" का गभीर जयघोष नदी की ओर सरकता-सरकता शान्त हो गया । कौओ की कर्कश ध्वनि भी मन्द पड गई ।

अब सुनाई पडा सियार की तरह हुहुआता कोई नारी-कण्ठ । चन्द्रा ने झुरमुट से निकलकर पूछा, "क्या हुआ बहू ?"

"दीदी, वह केनाराम हमारा सब दूध पी गया । बेचने के लिए रखा था । हाय दुर्गा मा, हाय इतना बड़ा नुकसान कैसे सहूगी ?"

"कितना दूध था ? '

"पूरा दस सेर था, वह जलमुहा अकेले गटागट पी गया । उसने भाले से मेरी झोपडी तोड दी, मेरे बर्तन-भांड़े फोड़ दिए ।"

"इस समय कहा है ?"

"फूलेश्वरी नदी मे किसी बनिया की बाइस-डांड़ की नाव आ गई, उसीमे ज़बरदस्ती बैठकर चला गया ।"

मामा की डांट का स्मरण कर जयचन्द्र जल्दी-जल्दी अपने घर की ओर चल पड़ा । नदी के किनारे गाभिन बकरी चारो खुर रगडती छट-पटा रही थी । उसके पेट से लाल-अतडिया निकल पडी थी । रक्त की धार नदी के पानी से मिल रही थी । जयचन्द्र ने मुह फेर लिया । यह भी डाकुओं के छर्रे की करतूत होगी ।

३

"चन्द्रा, अपने बेटे को संभालो ।"

"छोटी बौदी, क्या बात है ?"

"मैं इसे चारा दे रही थी तो यह मुझे सिर की ठोकर मार रहा था, मैंने एक थप्पड जमा दिया । अब यह रूठा खड़ा है । खा नही रहा ।

भाई, तुम अपने बेटे को सभालो। पार्वती का नन्दी, हा नही तो।"

बौदी चली गई।

"क्यों रे लछुवा, बौदी पर क्रोध करता है ? गुरुजनो से रूठते नही। खा ले, बाबा रे, तू तो अब बडा शक्तिशाली हो रहा है, बिल्कुल जयचन्द्र की तरह।"

जयचन्द्र से तुलनाकर चन्द्रा हस गई। सच मे जयचन्द्र की भुजाओ और वक्ष पर मासपेशिया और भी सुदृढ हो गई थी। वह लम्बा हो गया था। भीगी हुई मसो मे कालिमा और भी गहरी हो गई थी।

इधर बछडा भी काफी बढ गया था, लगभग पूरा बैल ही होने को आया था। कभी-कभी वह दुष्टता करता, इधर-उधर फुदकता तो चन्द्रा बडी कठिनाई से ही उसे वश मे कर पाती।

जयचन्द्र लगभग नित्य ही आता था। वह अभी-अभी कुछ देर पहले ही यहा से गया था।

चौकी पर कुछ पुस्तक-पत्र, लेखनी और मसि रखी थी। चन्द्रा के पिता पं० वशीदास भट्टाचार्य अधूरी पुस्तक छोड गए थे। चन्द्रा ने बैठकर कुछ पृष्ठ पढे। मनसा-मंगल (अथवा पद्मा-पुराण) की रचना चल रही थी।

चाद सौदागर ने उपवन लगवाया। अनेक वृक्ष, अनेक गन्ध-पुष्पो के पौधे पंक्ति के पंक्ति लगवाए। चन्द्रा की लेखनी चलने लगी .

जाती-जूथी बकुल मालती
रोपी आमलकी सुन्दर,
श्वेत-कृष्ण कबरी शेफाली
बकुल मल्लिका अति प्रियतर।

"प्रियतर हटाकर मनहर कर दो।"

चन्द्रा ने चौककर जयचन्द्र को देखकर कहा :

"अरे, तुम कब आ गए ?"

"मैं बहुत देर से तुम्हारे पीछे खडा-खडा पढता जा रहा हूं। जब नही रहा गया तो बोल पडा। मैंने विघ्न डाला। तुम्हें क्रोध आ रहा

होगा।"

चन्द्रा मीठा-मीठा मुस्करा गई, "नही तो।"

चन्द्रा के शरीर मे परिवर्तन आ गए थे, इससे उसे कुछ कष्ट भी होने लगा था। वह किसी अनपेक्षित भय से आतकित हो जाती थी। जहा तक सभव होता वह घर से बाहर बहुत कम निकलती थी। यदि निकलती भी तो धीरे-धीरे पैर रखती हुई चलती।

जयचन्द्र को लगने लगा था, यह चन्द्रा उससे दूर जा रही है। वह व्याकुल हो उठा था। कभी ऐसा भी समय आएगा जब दोनो के मिलने पर प्रतिबन्ध लग जाएगा।

तब क्या चन्द्रा के पास इसी प्रकार धान की खीले चबाते हुए वह साहित्य-चर्चा कर सकेगा, पोखरी की पुष्प-वाटिका मे साथ-साथ पुष्प-चयन कर सकेगा? पडित वंशीदास के मनसा-मंगल के लिए चन्द्रा के साथ छन्द-रचना कर सकेगा?

चन्द्रा से रहित जीवन की वह कल्पना तक नही कर सकता। वह अकुलाकर खाट से उठ खडा हुआ। चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था। आकाश मे तारे ऊघ रहे थे।

क्या ऐसा अवसर उसके जीवन मे नही आएगा कि चन्द्रा उसके घर की रानी और प्राणो की स्वामिनी बन सके, कि चन्द्रा बडे-बडे पलक झुकाकर उसकी थाली मे गरम सुगन्धित भात परोसे, कि उसके आंगन मे चन्द्रा के नन्हे-मुन्नो की किलक गूज उठे।

रात बीत नही रही थी। तारे अन्धकार की गहराई भेद नही पा रहे थे। जयचन्द्र के नेत्रो से नीद उड चुकी थी। पास के वृक्ष-कुज से भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही थी। संभवतः जूही के छोटे-छोटे श्वेत फूल महक रहे थे। जयचन्द्र को नारी-शरीर के लिए दी गई कृत्तिवास की उपमा याद आ गई···निर्मल कोमल अग जेनो जूथी फूल।[1]

"चन्द्रा बेटी, आजकल तो तुम्हारे ऊपर रग बरस रहा है।"

---

१. निर्मल कोमल अग, जूही के फूल जैसे।

चन्द्रा ने माछरागा को देखा तो काप गई। यह झगडालू औरत ससुराल वालो से लडकर मायके मे पडी रहती थी। लोग इसे इसके मुह पर रागादी कहते किन्तु पीठ-पीछे माछरागा अर्थात् मछली खाने वाली चील कहते। कोई इसे डायन समझता, कोई इसे कुट्टनी कहता।

यह थी तो काली-कलूटी किन्तु साडी पहनती चटक रंग की। केश खिचडी हो गए थे, किन्तु माग मे सिन्दूर की सदा बहार रहती। कान मे कर्णफूल और नाक मे फूल पहनकर पान खाने से काले पडे दात निकालकर बाते करती फिरती। यह किसी एक स्थान पर स्थिर नही रहती। गाव-गाव घूमना और परिवारो मे झगडा कराना इसका काम था।

वह हाथ पर हाथ मारकर नखरे से बोली, "हाय बिट्टो, तुम्हारे ऊपर जवानी का रंग ऐसे बरस रहा है, जैसे हिजल गाछ पर बसन्त बरस गया हो या शरद पूनो की रात चादनी झर रही हो।"

चन्द्रा को इस औरत के रोम-रोम से चिढ थी, उसकी बातो का एक-एक शब्द उसे दुर्गन्ध-भरा प्रतीत होता था, किन्तु यह थी अत्यन्त बखेडिन, अतः चन्द्रा नही बोली। चन्द्रा ओठ से ओठ भीचे दृढतापूर्वक चट्टान-सी खडी रही।

माछरागा वहा से आगे बढ गई।

४

मृदंग, करताल और एकतारा बज रहे थे। आगे-आगे एक दीर्घकाय दुबला ब्राह्मण जा रहा था। इसके प्रशस्त ललाट पर चंदन और गले में रुद्राक्ष की माला थी। यह रामनामी दुपट्टा कन्धो पर धारण किए था। यह गौर वर्ण ब्राह्मण मंजीर बजाता हुआ चल रहा था, इसके पीछे शिष्य लोग मनसा-देवी के गीत गाते हुए चल रहे थे। सभी इतने भाव-विभोर होकर चल रहे थे कि सभीकी आखों में आसू थे। किसीको भी ध्यान नहीं रहा कि सूर्यास्त होने को था और वे सही रास्ते पर न चलकर गलत रास्ते पर बढे जा रहे थे।

दिन मे भी जिस नल-खागड़ा के वन का नाम सुनकर लोनो के रोंगटे साही के काटो की तरह खड़े हो जाते थे, उस वन की ओर मनसा-गायनो का यह दल पागलो के समान बढता ही चला जाता था ।

करताल-वादक तो इतने आवेश मे आ गया कि धरती पर मूर्च्छित होकर गिर पडा ।

जैसे बादलो को फाड़कर बिजली कड़क उठती है, एक भयंकर चिग्घाड सुनाई पडी···

"जय काली !"

रास्ता रोके पर्वत के समान ऊचा एक काला मनुष्य खडा था । उसकी आखे बाघ की आखो के समान धधक रही थीं । केले के पेड़ के समान उसके हाथ-पैर मोटे थे । उसके सारे शरीर पर बडे-बडे रोम थे । वह कन्धे पर चौड़ा खाडा रखे था । उसके पीछे दस-पन्द्रह लोग तलवार और भाले लिए खडे थे ।

"जय काली !" तुमुल घोष हुआ ।

"क्यो ठाकुर,[1] मुझे पहचानते हो ?"

"पापी को कौन नही पहचानेगा ?" ब्राह्मण ने नि.शक उत्तर दिया।

"मैं केनाराम···पकड़ो इस सियार पंडित को, भागा जाता है ।"

केनाराम का नाम सुनते ही करताल-वादक भाग खडा हुआ था । केनाराम की आज्ञा पाकर एक डाकू ने उसे गरदन से पकडकर केनाराम के पास ला खडा किया ।

"कहा भागा जा रहा था ?"

"सरकार, सरकार···" करताल-वादक कान पर जनेऊ चढाते-चढ़ाते बोला, "सरकार, उधर-उधर···"

"चुप रह, सरकार का बच्चा ।" केनाराम दहाडा और करताल-वादक को उधर जाने की आवश्यकता नही पडी । धोती गीली हो गई । मृदंग-वादक थर-थर काप रहा था । एकतारा-वादक रोने लगा ।

"जो कुछ तुम्हारे पास है, दे दो ।"

ब्राह्मण ने झोली झाडकर दिखा दी, एक फटी धोती, गमछा, चन्दन,

---

१. ठाकुर—ब्राह्मण ।

माला और पोथी, बस और कुछ नही ।

"घर-घर गाते फिरते हो और तुम्हारे पास पैसा नही ?"

"पैसा ही होता तो घर-घर क्यो गाते फिरते ! इसके अतिरिक्त हम आवश्यकता से अधिक कुछ नही मागते । बस दो जून भोजन का प्रबन्ध कर लेते है ।"

"कोई बात नही, न सही पैसा । मुझे तो आदमी के मारने मे सुख मिलता है । मै तुम्हारी बोटी-बोटी काटूगा । इस खाडे की प्यास बुझाऊगा । हाऽऽ । जैसे बाघ खरगोश को खिला-खिलाकर मारता है, इसी तरह मै तुम्हे मारूगा । जऽय का ली !"

डाकुओ ने दूने आवेश से दुहराया :

"जय काली !"

करताल-वादक गिडगिडाया, "सरदार·· सरदार साहब, मै ··मै अपनी पत्नी का इकलौता प · पति हू ।"

"चुप्प बे इकलौते पति ! ठाकुर, मरने के पहले अपना नाम बताओ ।"

"द्विजवंशी ।" ब्राह्मण देवता मुस्कराकर बोले ।

केनाराम चौक उठा ।

"कौन द्विजवशी ? पंडित वशीदास भट्टाचार्ज ? जिनका गान सुनकर नदी का पानी धार की उल्टी ओर बहने लगता है । पत्थर पिघल जाते है । बादल बरस जाते है । पंछी उड-उडकर गान सुनने आ जाते है । साप सिर झुकाकर चले जाते है । चल रे गनेशा, केष्टो, हरिया, पाचकौडी, निताई, नाडू गोपाल···सब आ जाओ । पहले इस पडित का गान सुन ले । आज केनाराम आदमी को मारने के पहले गान सुनेगा । हा-हा-हा !"

सभी दूब पर बैठ गए । डाकू गायकों को चारो ओर से घेरकर बैठे । उन्होंने मशालें जला ली । गीध जैसे दो-तीन पक्षी पंख फटकारते हुए ऊपर से उड गए ।

"केनाराम, तुम धन छीनकर उसका क्या करते हो ?"

"मिट्टी मे गाड़ देता हूं ।"

"भोग नही करते तो छीनते क्यों हो ?"

"पापी लोग बहुत सारा धन इकट्ठा कर लेगे तो खुराफाते करेगे, इसलिए धन छीन लेता हूं । मै भोग क्या करूगा ! धरती माता का धन उनके पास रहे । इसीलिए मैं मिट्टी मे गाड देता हू ।"

"केनाराम, तुम यह पाप···"

"देखो ठाकुर, मुझे उपदेश नही चाहिए । अब बकवास बन्द करो । जो गान सुनाना है सुनाओ । फिर मैं अपना काम करू ।"

बेटी चन्द्रा की याद कर वशीदास की आखे डबडबा आईं । उन्होने माथे पर हाथ जोडकर शकर को प्रणाम किया .

"योगिराज देवेश्वर ! आज मैं अपने जीवन का अन्तिम गीत गाऊगा ।"

उन्होने शिष्यो को ललकारा "साथियो, आज तुम्हारी परीक्षा है । आज मौत के डर से माता का गान बुझे-बुझे मन से न हो । आत्मा अजर-अमर है । यह पापी उस आत्मा का कुछ नही कर सकता । बजाओ मृदग, बजाओ एकतारा, बजाओ करताल ।"

वशीदास के मजीर खनके, सभी वाद्य झकार उठे । वन-प्रदेश का भयानक सूनापन मधुर सगीत की लहरियो से गूज उठा ।

···केनाराम को कभी पारिवारिक प्रेम नही मिला ।

सन्तान न होने से बहुत दु खी था खेलाराम ब्राह्मण । उसकी पत्नी ने सपना देखा :

कमल फूल पर बैठी एक देवी । चार भुजाए, तीन नेत्र । पके केले के समान भरे हुए अग । कोमल सुन्दर शरीर पर आठ-आठ नाग डोल रहे । उनके प्रकाश मे सारा घर जगमगा उठा । उन्होने आषाढ-संक्रान्ति के दिन घट-स्थापन के लिए कहा । इससे पुत्र-प्राप्ति होगी ।

पुत्र प्राप्त हुआ । देवी की पूजा से क्रय किया गया—खरीदा गया, अतः इसका नाम केनाराम रखा गया ।

केनाराम के साथ दुर्भाग्य लगा चला आया । अभी दूध के दो-एक दांत ही निकले थे कि मा की गोद छिन गई । पिता बच्चे को इसकी मामी की गोद मे डाल आया ।

भयंकर अकाल । लोग घास खाने लगे । मामा ने इसे पाच काठा धान

के बदले डाकुओ के सरदार को बेच दिया। खूख्वार डाकुओ के मध्य पलकर केनाराम भी भयकर डाकू बना।

५

भ्रमर की गुजार जैसे स्वर मे वशीदास ने मनसा-भासान गाना आरम्भ किया :

चडी अपनी सौतेली पुत्री मनसा को सह नही पाईं। शिव पर चुभते हुए आक्षेप, मनसा को मारना, पीटना, उसकी एक आख फोड़ देना। चडी से डरकर शिव बेचारी अबोध बच्ची को भरमाकर भयकर वन में सेहुड के पेड के नीचे सोता छोड आए।

यही बच्ची शक्तिसम्पन्न देवी बनी। पद्म-पत्र पर जन्म होने के कारण इसका एक नाम पद्मा हुआ। अपनी पूजा कराने के लिए यह उग्र देवी सचेष्ट हुई।

चरवाहे विधि-विधान से किसी देवी का पूजन करते हैं, दुष्ट काज़ी सह नही सका। पाजामा-टोपी पहने हुए सैनिको ने सेहुड के पेड के नीचे स्थापित मनसा का अष्टनागो वाला घट तोड दिया। हिन्दुओं के पवित्र वृक्ष केले-तुलसी आदि उखाड दिए। कइयो के मुख मे थूका। ब्राह्मणो की जाति नष्ट करने के लिए उनके कानो मे कलमा पढा।

मनसा गरज-तरज उठी। असंख्य नाग झपट पडे, उन्होंने काज़ी के सैनिकों को घेरकर जकड लिया। सैनिकों के मुख से फेन गिरने लगा। वे 'तोबा-तोबा' चिल्लाने लगे। नागों ने बीबियो को भी घेरकर उनके इजारबन्दो मे प्रवेश किया। खाट-बिछौना सभी स्थानों पर नाग ही नाग छा गए। काज़ी की मा ने मनसा से क्षमा मागी और उनका पूजन किया, तब मनसा शान्त हुई।···

वशीदास ने मजीर धरती पर रखकर दुपट्टे से पसीना पोछा। केनाराम ने मुस्कराकर खाडे की धार परखी। फिर वाद्य-यंत्र खनक उठे।

…चम्पक देश का गन्ध वणिक चन्द्रधर (चाद सौदागर), शिव-पार्वती का भक्त। अपने शरीर से रक्त निकालकर उपासना करता। उसे महाज्ञान-मत्र मिला, जिससे मरो को जिलाया जा सकता।

उसने प्रतिज्ञा की कि वह मनसा की पूजा नही करेगा। मनसा ज़िद पकड गई, इससे पूजा करवाके ही मानूगी।

चाद की पत्नी सनका ने मनसा का घट स्थापित कर पूजा की। चांद ने भयकर क्रोध कर हिन्ताल[1] की लाठी से घट फोड दिया। मनसा भागकर आकाश मे उड गई।

मनसा ने प्रतिशोध लिया। असख्य नाग चाद के प्रिय उपवन में घुसकर वृक्ष नष्ट करने लगे। चाद हिन्ताल की लाठी लेकर पागलो-सा झपट पडा। नागो मे भगदड़ मच गई। कोई पत्तो मे छिपा, कोई चूहे के बिल मे, कोई जल मे डुबकी लगा गया। चाद दात पीसकर बोला:

"हाय, कानी ओछी! तुझे पकड़ नही पाया, नही तो तेरी नाक काट देता।"

उसने महाज्ञान-मत्र पढा और सभी कटे हुए पेड़ जीवित हो गए।

मनसा ने सुन्दरी युवती का रूप धारण कर चाद को मोहकर उसका महाज्ञान-मत्र छीन लिया। अब मनसा के नाग एक-एक कर चाद के पुत्रो को डसते गए। छह-छह जवान बहुओ के शंख[2]-सिन्दूर छिन गए। सनका धरती पर माथा पटक-पटककर रोई।

किन्तु न मनसा पसीजी और न चाद टस से मस हुआ,…"इस कानी दुष्टा का पूजन मैं कदापि नही करूगा।"

सातवें पुत्र ने जन्म लिया। नाम रखा गया लक्ष्मीन्द्र (लखिन्दर)। ज्योतिषियो ने कहा, कालरात्रि[3] के दिन इसे साप डस लेगा।

लखिन्दर बडा हुआ। ऐसी कन्या की खोज की जाने लगी, जो अपने

---

१. हिन्ताल—छोटी जाति का जगली खजूर

२ शख—शख को काटकर बनाई गई चूडिया, जिन्हे बगाली सधवाए पहनती है, इन्हे शाखा भी कहते है।

३ कालरात्रि—विवाह का तीसरा दिन। इस दिन बगाली नव दपती आज भी साथ-साथ नही सोते।

सतीत्व-बल से इसकी रक्षा करे। विपुला (बेहुला) नाम की कन्या पसन्द की गई, जो लोहे के चावलो को भी राध सकती थी।

चाद ने विशेष लुहार बुलवाकर लोहे का भवन बनवाया। उस घर के चारो ओर आग जला दी गई। ऐसी औषधियो का उपवन लगवा दिया गया जिसकी गन्ध से साप भाग जाए।

मनसा घबडा गई। एक-एक कर उनके सभी सांप असफल हो गए। इस नई बहू का सिन्दूर वह नही पोछ पा रही थी। अन्त मे वह पिता की जटाओ मे रहने वाले नाग को माग लाई। उसने लखिन्दर को डस लिया।

छह विधवा बहुए रो उठी। माता सनका सुन्दरी रोई। वह पागल-सी रास्तो पर दौडी फिरती। मार्ग में जो भी मिलता, उसीसे लिपटकर वह 'पुत्र-पुत्र' चीख उठती। उसके क्रन्दन से पशु-पक्षी भी रो उठे।

किन्तु चाद सौदागर गर्जनाकर उठा, "हर-हर बम-बम! कौन किसका बेटा, कौन किसकी बेटी। सारा ससार माया का खेल है। बेटी कानी, मैं तेरी पूजा नही करूगा, नहीं करूंगा।"

आखों मे आसू भरकर सती बेहुला हाथ जोडकर खडी हुई, "पिता, मुझे आज्ञा दीजिए। मैं पति को जीवित कराने देवसभा जाऊगी।"

नाव में पति का शव रखे बेहुला चलती गई, चलती गई। शव का मास गल गया। केवल हड्डिया रह गई। धूप और वर्षा की मार सहती हुई श्वेत उज्ज्वल अस्थियां।

बेहुला का धैर्य और उसकी निष्ठा की जीत हुई। इन्द्र प्रसन्न हुए।

मनसा भी पसीज गई। उन्होने चाद के सातों पुत्र जीवित कर दिए।

बेहुला नाव मे छह जेठो और पति को लिए बैठी है। सनका घाट पर छटपटा रही है, "बहु, नाव किनारे पर लगा। मेरे कलेजे के टुकडो को मुझे मिला दे।"

"नही मा, मैं वचन देकर आई हूं, जब तक पिता मनसा की पूजा नही करेंगे, मै तट पर नही आ सकती।"

सनका चाद के पैरो से लिपट गई, "कैसे निर्दय हो तुम। बहू सात-

सात बेटों को जिला लाई । तुम्हारा हठ बडा या बच्चो के प्राण ? देख नही रहे हो ये सात-सात निर्दोष वधुएं आखो मे आसू-भरे तुम्हारी ओर देख रही है । क्या इन्हे फिर विधवा करोगे ? बोलो, बोलो· ”

देशकाल की मर्यादा भूलकर छह-छह बहुए सौदागर के चरणो पर लोट रही थी, उनके धूसर केश धरती पर बिखरे पडे थे, आसुओ से धरती भीग रही थी । उनकी सूखी कलाइया सूनी थी ।

चाद सौदागर के हृदय मे तूफान उठ आया । वह सयत स्वर में बोला, "मै इस ओछी देवी की ओर पीठकर बाये हाथ से केवल एक फूल चढा दूगा ।"

मनसा मान गई ।

"गुरु, यह तुमने क्या सुना दिया ? गुरु हो···"

केनाराम चीत्कारकर रो पडा । सभी स्तब्ध थे । सवेरा हो गया था किन्तु डाकू मशाले बुझाना भूलकर हक्के-बक्के बैठे थे ।

"गुरु, मुझे तो आज तक ऐसी बाते किसीने नही बताईं । माता-पिता और बेटे का, पति और पत्नी का ऐसा भी प्रेम होता है, यह मैने कभी नही जाना । मुझे अपने चरनो मे ले लो । अब, भीख मत मागना गुरु ! मैं तुम्हे इतना धन दूगा कि सात पीढी तक बैठे-बैठे खाओगे ।"

वह पागल जैसा भागता गया और एक पेड के नीचे से तीन घडे खोद लाया । मशाल की लपटो मे स्वर्ण-मुद्राए और भी चमचमा उठी ।

वंशीदास उदासीन होकर बोले, "मैं ब्राह्मण इतना धन लेकर क्या करूगा । इसके अतिरिक्त यह पाप का धन है । पता नही कितनी नई बहुओं के शख-सिन्दूर तोड-पोछकर, कितनी माताओ की गोद सूनी कर तुमने यह धन इकट्ठा किया है । ये चमकती हुई सोने की मुहरे खून और आंसू से सनी है । इन्हे छूना तो दूर मैं तो इन्हे देख भी नही सकता ।"

केनाराम स्वर्ण-मुद्राओ से भरे तीनो घडे नदी मे फेककर अट्टहास कर उठा ।

अनेक व्यक्तियों के रक्त से रजित खाडा से वह अपनी गर्दन काटने के लिए तैयार हो गया । वंशीदास प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते

हुए बोले :

"स्नान करके आओ, मै तुम्हे मुक्तिमन्त्र दूगा। मनसा मा के गीत गाने से तुम्हारे पाप कट जाएंगे।"

केनाराम ने खाडा नदी मे फेक दिया।

६

नवालता गन्धवहेन चुम्बिता···

"नैषध-चरित का यह छन्द तुम्हारी समझ मे आया, चन्द्रा ?"

"हा, क्यो नही। नई लता का स्पर्श गन्धवह अर्थात् वायु ने किया।"

"नैषध-चरित को समझना इतना सहज नही है। इसमे कई अर्थ गुथे पडे है। नवालता से सकेत किसी सुन्दरी नारी से है, जिसे सुगन्ध लगाए किसी पुरुष ने चूम लिया है। नवालता का अर्थ ऐसी सुन्दरी भी है जो अब बच्ची नही रह गई है···न बालता, अब युवती हो गई है।"

श्लोक का अर्थ समझाते-समझाते जयचन्द्र का गला काप गया, किन्तु चन्द्रा वैसी ही शान्त बैठी रही। जयचन्द्र जो अभिप्राय उस तक सम्प्रेषित करना चाहता था, नही कर सका।

"चन्द्रा, तुम प्यार समझती हो ?"

"समझती हूं।"

"किसीको किया है ?"

"हा, किया है।"

"किसे ?"

"मा-बाबा और दोनो दादाओ को।"

"और ?"

"और बौदीदियो को।"

"और ?"

"और ?···" चन्द्रा लजा गई। जयचन्द्र की सांस तेज हो गई। वह

हकलाते हुए बोला :

"बताओ न और किसे ?"

"और मालो बौदी को ।"

"बस ?"

"लच्छू को भी ।" चन्द्रा का सिर झुक गया ।

"मुझे नही ?"

"तुमको तो करती ही हूं ।"

किन्तु जयचन्द्र को ऐसा नही लगा कि यह 'तुम' मां-बाबा-दादा-बौदी और लच्छू से कही अलग है ।

जयचन्द्र को लगा, वह जो कुछ कहना चाहता है, कह नही सकेगा। वह भारी पदो से घर लौट गया ।

चन्द्रा को उगता हुआ सूर्य, चन्द्रमा की शीतल किरण, वायु का स्पर्श सुखद रोमाच देने लगे । कभी उसकी इच्छा होती, बादलो के साथ केश फैलाए वह दूर तक उडती चली जाए । कभी उसका मन होता, भोर के समय तुमुल स्वर मे गानेवाली चिडियो के साथ कंठ मिलाकर खूब-खूब गाए । कभी वह फूलेश्वरी नदी मे घंटो तैरना चाहती ।

उसके अंग-अंग मे, नस-नस मे एक विचित्र उत्तेजना बढती जाती ।

कभी वह अपने को नई खिली मालती लता-सा पाती, कभी बौराए आम-सा ।

वर्षाऋतु मे बगदेश की नदिया अतुल जलराशि लेकर उमड पड़ती हैं । चन्द्रा के शरीर मे भी यौवन का ज्वार आ गया था ।

किन्तु यह ज्वार मन के भीतर था, यह न वाणी में था और न नयनों मे । अपितु ऐसा कहना चाहिए कि वह मर्यादा की सीमाओ में अधिकाधिक बंधती जा रही थी । सावन की इतराती नदिया मर्यादा के चट्टानी कूलों मे बंधी थी ।

छोटी बौदी ने उसे कांचुली तैयार कर दी । चन्द्रा लज्जा से गड गई थी । बहुत दिनो तक वह उसे छिपाए रखे रही, फिर पहनना ही पडा।

"क्यो मालो बौदी, मैने सुना है कि तुमने बेनू दादा को पसन्द करके ब्याह किया था। तुम्हे ये कहा मिल गए थे ?"

"हाय दीदी मोनी, यह तुम क्या पूछती हो।" मालो ने नाक पर हाथ रख लिया। उसका पति खाते-पीते घर का था। मालो रगीन सूती साडी पहने थी। उसकी पतली कलाइयो मे शाखा झलमला रहे थे माथे का सिन्दूर जितना गाढा था उतनी ही गाढी पति-पत्नी की प्रीति थी।

थोडे-बहुत नाज-नखरे के बाद मालो ने अपनी प्रीति-कथा बता दी थी।

बेनू को कार्तिक के ज्वर ने धर दबोचा। वह खेत का काम नही कर पाया। फसल बिल्कुल नही हुई। मा-बेटे भूखे मरने लगे। बेनू कमाने के लिए घर छोडकर चल पडा। वह मालो के मायके के गाव मे आकर पोखर के किनारे सो गया। इस पोखर के चारो ओर झाड-झंखाड़ थे।

मालो जल भरने आई। उसे बेनू पर दया आई। यदि यह परदेशी साझ तक सोता रहा तो अंधेरे मे इसे कही साप न डस ले। पराये पुरुष को वह जगा सकती नही थी। उसने घडा इस प्रकार भरा कि उसकी आवाज़ से बेनू के पास फसाकर रखा कौडा पक्षी बोल उठा। फूले हुए कदम्ब वृक्ष के नीचे लेटा हुआ बेनू जाग गया। दोनो ने एक दूसरे की ओर देखा, दोनो के हृदयो मे भी कदम्ब खिल उठा।

मालो उसे अपने घर आने के लिए निमन्त्रित कर चली गई। मालो के पिता ने बेनू का आतिथ्य किया। खाने को दिया सुगन्धित भात, मछली और सन्देश, सोने के लिए शीतल पाटी और डुलाने के लिए पंखा।

बेनू भारी पगो मे घर लौट आया, हृदय तो मालो के पास ही रह गया था। बेनू मां से कुछ कह नहीं सकता था, जैसे-तैसे मित्रो को उसने बताया।

मालो का बाप बोला, "हु, लक्ष्मी-पूजा तक के लिए चावल के दो दाने घर मे नही है, मेरी लाडली का हाथ थामने चला है।"

बेनू को बात लग गई। वह कमाने निकल पडा। कौडा पक्षी के शिकार से उसने बहुत कमाया। मालो का बाप अब प्रसन्न हो गया।

अब स्त्रिया ओठो पर तीन-तीन बार हथेलियो का प्रहार कर 'आबा-आबा' की मगल-ध्वनि करने लगी।···

"अच्छा मालो बौदी, जब दादा तुमसे पहली बार मिले, तो क्या बोले थे ?"

मालो की आखो मे चमक आ गई, उसने आखे झुकाकर मुँह के सामने अचल खीच लिया और बोली :

"उन्होने कहा था···प्रान सखी, तुम तो महुआ के फूल-सी सुन्दर हो।"

चन्द्रा मुस्करा उठी, "बेनू दादा देखने के ही भोले है, ऐसी-ऐसी कविता बोल लेते है !"

मालो चली गई। लच्छू बार-बार 'बा-आ-आ' की ध्वनि कर रहा था। क्या बात है, चन्द्रा कहा गई ? पडित बशीदास किसीकी जन्मपत्नी बना रहे थे। वे खडाऊ पहने बाहर निकले। कन्या सेंहुड के वृक्ष के नीचे चटाई बिछाए कुछ लिखे जा रही थी। वशीदास दबे पाव बछडे के पास गए और कुछ दूब उखाडकर उसके सामने डाल आए। वे फिर दबे पाव लौट गए।

७

चन्द्रा को उठने मे आज कुछ देर हो गई थी। वाटिका मे आज अभी तक जयचन्द्र भी नही आया था।

सूर्य निकल आया। सूर्य ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह हल्दी लगाकर स्नान कर आया हो।

चन्द्रा ने सबसे पहले शिव की पूजा के लिए रक्तजवा के फूल तोडे, फिर माला गूथने के लिए मालती के फूल। इसी समय जयचन्द्र आ गया। वह उदास था। उसकी आखे सूजी हुई थी, जैसे कि रात को सो नही पाया हो।

चन्द्रा की उगलिया माला गूथ रही थी, जयचन्द्र शकित होकर देख रहा था, कही सुई इन कोमल उगलियो मे न चुभ जाए। चन्द्रा ने माला

पेड की जड पर रख दी।

"चन्द्रा, पहले तो तुम माला हाथ मे देती थी। अब क्या हो गया ? तुम मुझसे ठीक से बोलती भी नही।"

चन्द्रा की पलकें और भी नीचे झुक गईं :

"वे बचपन की बातें थी। अब हम बडे हो गए हैं।"

"चन्द्रा, मेरी एक बात सुन लो।"

"मै चलूगी, बाबा की पूजा के लिए देर हो रही है।"

"कन्या, आज जीवन-भर के लिए विदा लेने आया हूं।"

चन्द्रा की झुकी हुई पलकें उठी, "क्यो, ऐसा क्या है ?"

"कहते नही बनता।"

"ऐसी क्या बात है जो तुम कह नही पाते ?"

"मैं आज रात-भर लिखता और फाड़ता रहा हूं। यह पत्र दे रहा हू, मै इसका उत्तर चाहता हू।"

चन्द्रा पत्र लेकर घर चली आई।

उसने पत्र अंचल मे बाधकर देव-मन्दिर गगाजल से धोया। पूजा का आसन बिछाया। चन्दन घिसा। पत्तों मे फूल रख दिए।

बंशीदास ने देखा, कन्या दिन-दिन सयानी और गभीर होती जा रही है। उन्हें चिन्ता लग गई। अब इसके हाथ पीले करने ही चाहिए। मन पूजा से उचट गया।

चन्द्रा पेड़-पौधो के झुरमुट मे चली गई। वहा उसने अचल से पत्र खोलकर पढ़ा .

"कन्या, तुम्हारी गुंथी हुई माला को लेकर मैं एकान्त मे रोया करता हू। तुम्हारे सामने न रहने पर मुझे सारा संसार अन्धकारमय प्रतीत होता है। मैं मन की बात कभी नही कह पाया, जीभ नही खुलती। तुम्हारे पिता नैष्ठिक और धार्मिक ब्राह्मण हैं। तुम उनकी प्राणो से बढ़कर प्यारी कन्या हो। मैं तो अनाथ हूं। मामा के दानों पर पल रहा हू। मैंने तुम्हें जिस दिन देखा, उसी दिन से तुम्हारे प्यार मे पागल हो गया। तुम्हे पाने के लिए मैं सब कुछ दे सकता हू। मैं आज ही घर छोडकर परदेश चला जाऊंगा, किन्तु यदि तुमने उत्तर दिया तो सदैव तुम्हारे चरणो का

किंकर बना रहूंगा।"

चन्द्रा रो पडी।

आज उससे भात नही खाया गया। रात को नीद नही आई। प्रात की ओर झपकी आई तो उसने स्वप्न देखा—जयचन्द्र वर-वेश मे उसके पार्श्व मे है और वह पिता की उपस्थिति मे मण्डप के नीचे वधू-वेश मे खडी है।

प्रातः चन्द्रा फूल तोडने के लिए उस वाटिका मे नही गई। अपने घर के आगे-पीछे स्थित पेड-पौधो के फूल ही उसने तोड लिए।

उसने मालती के फूल तोडे, माला बनाई। किसे दे यह माला ? पिता शिव को फूल अर्पित करते है, क्या वह भी यह माला अपने उपास्य की स्मृति मे पवन को अर्पित कर दे ?

जयचन्द्र ने यह क्या किया ? क्या उसे ऐसा पत्र लिखना चाहिए था ? मैं क्या उत्तर दू, मै तो पिंजडे मे बन्द मैना जैसी हू।

मेरा मन कैसा होने लगा है। शरीर मे यौवन ज्वार के पानी के समान आने लगा है। आज जयचन्द्र से भेट न कर सकने के कारण मन कितना व्याकुल हो उठा है ! क्या उत्तर न पाकर सच मे वह परदेश चला जाएगा ?

चन्द्रा ने जल से आचमन किया। शिव के चरणो मे प्रणाम किया। दिन के स्वामी सूर्य और रात के स्वामी चन्द्र को साक्षी कर उसने प्रतिज्ञा की कि वह जन्म-जन्म मे जयचन्द्र को ही पति के रूप मे देखना चाहती है।

उसने सावधानी के साथ पत्र लिखकर जयचन्द्र के पास भेज दिया :

"घर मे मेरे पिता विराजे
बेबस मैं क्या जानूँ,
अबला नारी होकर बोलो
कैसे उत्तर दे दूँ।"[1]

जयचन्द्र से न मिलना इतनी व्यथा दे जाएगा, चन्द्रा ने अब जाना।

---

१. घरे मोर बाप आछे आमि किबा जानि।
आमि केमने देई उत्तर अबला कामिनी॥

वह वाटिका नही जाती थी, किन्तु उसके कान किसी भी आहट से चौक उठते थे।

वह अपना अधिक से अधिक समय पूजा-पाठ और लिखने-पढने में लगाने लगी।

कभी-कभी वह सस्कृत-काव्य पढने बैठ जाती। कई बार पढी हुई पंक्तिया अब उसे नूतन अर्थ देने लगती। जयचन्द्र ने जो पक्तिया उसे कभी-कभी विशेष-रूप से सुनाई थी, उन्हे पढकर वह विचारो मे खो जाती। जयचन्द्र का अभिप्राय समझकर वह लाज से रंग जाती, फिर भी उन पक्तियों मे छिपी मिठास उसके तन-मन पर छा जाती।

प्रात स्नान कर लौटते हुए सुगन्धित रगीन पुष्प भरकर चन्द्रा ने उगते हुए सूर्य को अर्घ्य देकर प्रणाम किया।

हे सूर्य देवता, हे धरती-जल-अग्नि-आकाश-वायु ! सभी तत्त्व साक्षी रहे, मै जयचन्द्र को वर के रूप में माग रही हूं। मुझे रेशमी वस्त्र, स्वर्ण-अलकार और स्वादिष्ट भोजन नहीं चाहिए। मै अपने ऐसे ही फटे वस्त्रों और छानी-छप्पर मे अपने माग के सिन्दूर के बल पर रह लूगी। अपने इहकाल और परकाल के देवता का मुख देखकर मुझे जो सुख मिलेगा, वह महलों और स्वर्ग के सुख से भी बढकर असीम होगा।

नदी के किनारे मोटा-तगडा हिजल पेड खडा था। इसपर लाल फूलो के गुच्छे झूल रहे थे। मधुमक्खियो के छत्ते भी लगे हुए थे। जयचन्द्र इसकी ऊंची डाल पर सोचता हुआ बैठा था। चन्द्रा ने साफ-साफ क्यो नही कहा ? ऐसा उत्तर क्यों दिया ? वह स्वय क्या चाहती है ? क्या वह प्यार नही करती ?

उसके शरीर में यौवन की भूख जाग उठी थी। ऐसी मदमाती हवा, फूलो से लदे मौसम और शहद की गन्ध से भरे वातावरण में उसने आंखें बन्द कर चन्द्रा की स्मृति मे एक चुम्बन फेंक दिया।

नदी-तट की ओर उसे पगध्वनि सुनाई पडी। खंजन की तरह नाचती हुई-सी एक षोडशी कन्या चली आ रही थी। उसके शरीर में यौवन

सावन मास की नदी की तरह उमड रहा था

नदी-तट पर साडी और कलसी रखकर, वह धीरे-धीरे जल मे धसी। घुटने-भर जल मे जाकर वह बैठ गई। उसने सावधान होकर चारो ओर देखा, अचल हटाया और काचुली उतारने लगी। उसका बेलफलो-सा सु-पुष्ट वक्ष देख जयचन्द्र अवाक् रह गया। लडकी ने जूडा खोल दिया। काले नाग चारो ओर बिखर गए। जल के मध्य उसका शरीर चम्पा फूला-सा चमक रहा था।

युवती ने आचल के एक कोने मे गाठ बाधी और बंगाली नारी की तरह उससे रगड-रगडकर अग धोने लगी। उसने चारो ओर देखा, कोई नही है ऐसा जानकर वह वक्ष का परिष्कार करने लगी। कुच-द्वय ताल-फल के समान कम्पित हो रहे थे।

चन्द्रा इससे खरी गोरी है, किन्तु उसमे इस युवती जैसी न चपल मादकता है और न ऐसा पूर्ण यौवन-विकास। वह तो अपरिपुष्ट सुमन-कली है, जिसने भ्रमरो को न बुलाना सीखा है, न रिझाना। जिसे अपनी सुरभि का भी ज्ञान नही है।

युवती ने उरोजो को गीले कपडे से ढक उन्हे बारी-बारी से देखा और मुस्करा गई। इसे अपने यौवन-विकास और अपनी सौन्दर्य-शक्ति का ज्ञान है।

उसने कपडे बदले, ओठ दबाकर साडी निचोडी, कलसी भरी और ठुमकती हुई चल दी।

जयचन्द्र को दुष्टता सूझी, उसने बासुरी पर कूक भरी। युवती चौकी, रुककर खडी हो गई। बासुरी चुप हो गई। युवती चल पडी, बासुरी पर एक मादक लोकगीत कुहुक उठा। युवती फिर रुक गई और मुग्ध दृष्टि से मुरली-वादक की खोज करने लगी। बासुरी फिर बन्द हो गई। युवती ने कदम बढाए। फिर बासुरी कुहुकी। बडा ही प्यारा गीत चल रहा था। कही बजाने वाला फिर बन्द न कर दे, इस भय से युवती रुकी नही। वह धीरे-धीरे चलती और सुनती जा रही थी।

८

सारे घर में हलचल मच गई थी। बैठक मे पास के गांव से आए हुए घटक ब्राह्मण[1] बैठे हुए थे। बहुओं ने नारियल, चावल और खजूर से बनी दो-एक मिठाइया कटोरियो मे सजाकर राजीवलोचन (चन्द्रा के छोटे दादा) के द्वारा पहुचा दी। इस निर्धन परिवार के लिए कल ही किसी यजमान ने ये मिठाइया भेजी थी। आज काम आ गई।

घटक लोग जलपान कर चुके थे और वे अब केवडा और कपूर पडा-पान चबा रहे थे।

वशीदास अपना रामनामी दुपट्टा ठीक करते बोले:

"महाशयो, अब बताइए। किस उद्देश्य से आपका शुभागमन हुआ है? मै आपकी क्या सेवा करूं?"

"आपके घर मे सुन्दरी, सुशीला और विदुषी कन्या है। इसकी वयस हो चुकी है। हम घटकाली करना चाहते है।"

"कृपया घर-वर का विवरण दे।"

"लडका साक्षात् कार्तिक-सा सुन्दर और शास्त्रज्ञ पडित है। उसने साहित्य का भी अध्ययन किया है।"

"किस वंश का है?"

"चक्रवर्ती-वंश का है, वंश निर्दोष है और आपकी कन्या इस वंश में जा सकती है।"

"लडका कहा का रहने वाला है?"

"सुन्धा गाव का।"

"सुन्धा गाव का?"

"जी हा।"

"लडके का नाम?"

---

१. घटक—वर-वधू के जोडे मिलाने वाले ब्राह्मण। उनके इस कार्य का नाम घटकाली।

"जयचन्द्र ।"

"जयचन्द्र ?"—वंशीदास उत्तेजित होकर उठ खडे हुए। घटको ने अट्टहास किया। वंशीदास के मुख पर सन्तोष उभर आया।

जन्म-कुण्डलियां देखी गईं, मिल गई।

"तो पंडितजी, देखिए पछुवा पवन मे अभी भी ठडक है, आम के पेड पर नये पत्ते और बौर आ गए है। इसी महीने मे विवाह हो जाना चाहिए। बताइए, आप क्या कहते है ?"

"जैसी आप लोगो की आज्ञा।"

बैठक के द्वार से छिपी-छिपी बहुएं वार्ता सुन रही थी। श्री वल्लभ (चन्द्रा के बडे दादा) की बहू ने उलुध्वनि[1] और राजीवलोचन की बहू ने शखध्वनि से वातावरण गुजा दिया।

चन्द्रा दौडी आई, "बौदी, क्या हो गया ?"

"कुछ नही, मधुर मिलन।"

"मै समझी नही।"

"हाय, तुम क्या समझोगी। फूल-माला तैयार करो। बचपन के साथी सपनों के राजा जयचन्द्र चक्रवर्ती के कंठ मे वरमाला डालने की तैयारी करो।"

चन्द्रा की आखें झुक गईं, उसने दोनो हाथो से अपना मुह ढक लिया। छोटी बौदी ने उसके दोनो हाथ उठाकर लाज से लाल हुए कपोल चूमकर उसे छाती से लगा लिया।

वशीदास भोजन करने बैठे। पत्नी ने एक कटोरी में लौकी की तरकारी और दूसरी में केवल छटाक-भर मोटे चावलो का भात परोस दिया। वंशीदास का हाथ नहीं उठा।

"तुम लोगों ने अपने लिए भी कुछ भात रख लिया है या नही ?"

"रख लिया है।"

"मुझे हाड़ी दिखाओ।"

"विश्वास करो, रख लिया है। कुछ दिनो मे ही कटहल पकने

---

1. उलुध्वनि—मगल अवसरो पर बगाली महिलाए दोनो हथेलिया मुह पर रखकर मुह के भीतर जीभ हिलाती हुई 'उलूलू' ध्वनि करती है।

लगेगे ।"

इस निर्धन ब्राह्मण परिवार के घर मे गर्मी की ऋतु मे चावल नही रह जाते थे। कई-कई दिनो तक पका कटहल और शाकपत्ती आदि खा-कर दिन काटे जाते थे।

"कहो गृहिणी रानी, चन्द्रा के घर-वर से प्रसन्न तो हो ?"

'मनसा माता ने मेरी सुन ली। कन्या अच्छे घर जाएगी।" पडि-तानी ने अपनी फटी साडी के आचल से आसू पोछ लिए।

वशीदास अपनी झोली मे पत्नी का एकमात्र चादी का गहना पाशुली[1] छिपाकर घर से बाहर निकले। चन्द्रा बछडे के पास खडी कुछ कर रही थी। पिता को देख मुह छुपाकर भीतर भाग गई। वंशीदास ने बछड़े के पास जाकर देखा, उसके गले मे काले कपडे के फूलो की माला पड़ी थी। माथे पर दही-चावल का तिलक था। धरती पर कुछ दूब और भात के कण पडे थे।

वशीदास की आखें भर आईं। उन्होने बछड़े की रस्सी खोली, तो वह चन्द्रा वाली झोपडी के द्वार की ओर रंभाकर भागा।

एक बार वशीदास के मन में हुआ कि रहने दिया जाए, बछडे को छोड़ ही दिया जाए; किन्तु कोई उपाय नही था। उनके मुह से एक दबी कराह निकल गई।

गहना सुनार के यहा पहुंचा, बछड़ा एक पश्चिमी व्यापारी के हाथ और गाभिन गाय पहुंची एक किसान के यहा।

बेटी का विवाह। एक स्वाभिमानी दरिद्र ब्राह्मण को इस स्थिति का सामना करना ही था।

"केनाराम आ गया!"

बच्चे गुल्ली-डडा छोड़कर भागे। बहुएं हाथ का काम छोडकर भाग उठीं।

"केनाराम आ गया!"

---

१. पाशुली—पैरो मे पहनने का एक अलकार।

धिक-तान-धा-धा ! ·बज उठा खोल (मृदंग), आ गया केनाराम। बच्चे-बहू सभीके बीच घिरा खडा है केनाराम। काला-कलूटा कुभकर्ण-सा। खोल बजाता हुआ नाच रहा है, मुह पर बच्चो-सा भोलापन।

"मा गो[1] ! जय विषहरी पद्मा माता !"

बच्चे ककड फेंक-फेंककर मार रहे है, "केनाराम माताल, केनाराम माताल !"

केनाराम पागल है।

स्त्रिया मुह पर आचल रखकर हंस रही है। सभी बच्चे भूल गए कि कुछ महीने पहले इसी केनाराम का नाम सुनकर दिलो मे भूचाल आ जाता था।

चन्द्रा को देखते ही केनाराम दौड पडा। उसने प्रणाम किया और उल्लास से नाचने लगा :

"ओ मा, तुम्हारे इस बूढे बेटे को बहुत भूख लगी है।"

चन्द्रा ने एक पका कटहल उठाकर केनाराम को दे दिया।

केनाराम की कमर मे भिक्षा की झोली बधी है। वह खोल बजाता हुआ घर-घर भिक्षा माग रहा है।

चन्द्रावती ने अन्तिम पक्ति लिखी

"केनाराम गीत गा रहा
वृक्ष झर रहें पत्ता,
पयार छन्द मे रचना करती
द्विजवशी की दुहिता।[2]

दस्यु केनाराम का पाला समाप्तः। इति।"

लेखनी रखकर चरम तृप्ति मे चन्द्रावती ने आंखे मूद ली।

समस्त पृष्ठ बटोकर उसने पोथी नये कपडे मे बाधकर सावधानीपूर्वक रख दी। यह चन्द्रावती द्वारा लिखी गई प्रथम पोथी थी। क्या ही अच्छा

---

१ ओ मा !

२ केनाराम गाय गीत झरे बृक्षेर पाता।
पयार प्रबन्धे भने द्विजबशी सुता॥

होता, जयचन्द्र उसकी यह पोथी देख पाता।

जयचन्द्र के मन मे एक नया काटा बिंध गया था। वह दिन-भर बेचैन घूमता रहा। यह युवती कौन है ? वह जब कल आएगी तो उसका पीछाकर पता लगाएगा। कल तो बहुत देर मे आएगा। आसपास की बस्ती मे वह घंटो घूमता रहा, कही वह युवती दिखाई नही दी। रात को भी जब-जब उसकी नीद टूटी, उसे जल के बीच थिरकते हुए चम्पक-पुष्पो का जोडा ही दिखाई पडता रहा।

दूसरे दिन जयचन्द्र नदी-तट पर सीधा न जाकर उससे कुछ पहले ही स्थित वृक्ष की जड़ पर बासुरी लेकर बैठ गया। कल वाले समय पर ही कन्या आई। जयचन्द्र और उसकी बासुरी को देख वह कुछ ठिठकी, फिर भौहे चढाकर उसके प्रति पूर्ण विरक्त दिखाती चली गई।

जयचन्द्र गा उठा :

"वर्षा मे उफनाती नदिया
हो जाती है पागल,
मन भी यौवन मे इठलाता
तोड लाज की साँकल।"[1]

जयचन्द्र वही बैठा बांसुरी बजाता रहा। वह नदी-तट की ओर नही गया, ताकि युवती आश्वस्त होकर नहाती रहे, लज्जा का अनुभव न करे।

लडकी नहाकर कलसी लिए हुए लौटी। जयचन्द्र पोथी खोलकर पढने बैठ गया। उसने व्यस्तता का ऐसा बहाना किया, मानो उसने कन्या को देखा ही न हो।

युवती के चले जाने पर दूरी बनाता हुआ वह उसका पीछा करने लगा। आठ-दस खेत की दूरी पार कर कन्या मुसलमान-बस्ती की ओर मुड़ गई और बासों के झुरमुट के बीच स्थित एक घर मे चली गई। घर के बाहर गाय बधी हुई अपने सात-आठ दिन के बछडे को चाट रही थी।

---

१ आषाइढ़ा नदीरे जेमन पागल हइया जाय।
मनेरे बोझाइया बन्धु राखा नाहि जाय॥

एक नंग-धडंग लडका रास्ते मे घरौदे बना रहा था। जयचन्द्र ने बांसुरी पर धीरे-धीरे फूक मारकर लड़के का ध्यान आकृष्ट किया। वह दांत निकालकर देखने लगा।

"खोका, तुम्हारा नाम क्या है ?"

"फकिर चाद।"

"तुम एक बात बता सकते हो ?"

"क्या ?"

"ये जो दीदी अभी चली गई, इनका नाम क्या है ?"

"आशमानी।"

"अच्छा, पहले तो ये नही दिखाई दी।"

"अपने मामा के यहा रहती थी।"

"ये किसकी बेटी है ?"

"काका की।"

"काका का नाम क्या है ?"

"काका है।"

जयचन्द्र को आघात तो लगा कि यह कन्या मुसलमान निकल गई, किन्तु "स्त्री रत्न दुष्कुलादपि" कथन का स्मरण कर वह उससे विरत नही हुआ।

वह नित्य नियमपूर्वक पेड के नीचे जा बैठता, न बासुरी बजाता, न गीत गाता। वह आशमानी को चिढाना नही जीतना चाहता था। छेड-खानी करने से वह भड़क सकती थी।

कभी-कभी वह चोरी-चोरी आशमानी को देख लेता, आशमानी दिन-दिन उसके धैर्य का हरण कर रही थी।

९

एक दिन जयचन्द्र से रहा न गया तो उसने कमलपत्र पर दो छन्द लिखकर उस स्थान पर रख दिए, जहा बैठकर आशमानी नहाती थी।

"माता पिता न कोई मेरे
भाई नही सहोदर,
नदिया मे बहता हूँ बेबस
मैं सिवार-सा होकर ।

"यदि मेरी बन जाती कन्या
पाता मन मे अति सुख,
घी-दीपक से देखा करता
तेरा चन्दा-सा मुख ।"[1]

आशमानी के जाने के बाद जयचन्द्र ने तट पर जाकर देखा, कमल-पत्र के टुकडे-टुकडे कर दिए गए है । इसका अर्थ है उसने छन्द पढे तो है, किन्तु वह अत्यन्त रुष्ट भी हुई है ।

दूसरे-तीसरे दिन फिर जयचन्द्र ने कविताएं लिखीं । इस बार शायद आशमानी ने उन्हे छुआ भी नही । अब वह समय बदलकर आने लगी । अतः कई बार उसकी भेंट जय से नही हो पाती ।

एक बार अकस्मात् दोनो एक ही पथ पर टकरा गए । जयचन्द्र हक्का-बक्का-सा खडा रह गया । आशमानी उसके पास से निकलती हुई कह गई :

"ज्वार की चील ।"

आशमानी कितनी बड़ी कविता कह गई । तीन शब्दो की कविता । इन तीनो शब्दों मे ही वह कैसा पैना बाण मार गई ।

ज्वार की चील ! ···बगाल में नदियों का जाल बिछा है । ज्वार के

---

१. माता नाइ से बाप नाइ
से आमार गर्भ सोदरै भाइ,
स्रोतेर शेओला हइया
भासिया बेड़ाइ ।

आमार यदि हइते लो कन्या
पाइताम मने सुख,
ज्वालिया घृतेर बाती
देखताम चान्द मुख ।

समय नदियो का पानी थम जाता है और बहाव से उल्टा बहने लगता है। उस समय मछलियो के पाने की लालसा मे चीले पागल होकर मंडराती हैं।

इसी प्रकार जब कोई लडकी युवती होने लगती है तो मनचले कामुक युवक पागल होकर उसके आसपास मंडराते हैं।

ज्वार की चील !—आशमानी के तन को नोच लेने के लिए कई मनचले युवक मडराये होगे, तभी वह खीझी हुई है।

आशमानी की इस मीठी गाली, इस नन्ही कविता पर वह और भी रीझ उठा। इस मुस्लिम युवती में उसे एक नूतन आस्वाद जान पडा।

आशमानी को आश्चर्य हुआ कि 'ज्वार की चील' कहे जाने पर जयचन्द्र ने मिलना ही छोड दिया। वह जयचन्द्र को देखकर भडक उठती थी, किन्तु नदी पर आते-जाते समय उसके हृदय की धड़कन बढ़ जाती थी। वह मानो धडकते हृदय भी किसीकी प्रतीक्षा करती रहती थी।

क्या जयचन्द्र डर गया ? क्या अब वह नही आएगा ? नही आएगा, न आए, चलो बला टली।

बला टली नही। जल में आधा डूबा हुआ कमलपत्र पडा था, लिखा था—

"मैं ज्वार की चील नही हूं। निष्ठुर, एक बार तो हंसकर बोल दे। तूने सच ही मुझे पागल कर दिया है।"

आशमानी के जाने के बाद जयचन्द्र ने नदी के किनारे जाकर देखा, उसकी लिखावट के नीचे कुछ लिखा है—

"लाज नही रे निलज बभनवा
लाज नही रे बिल्कुल,
बांध गले मे कलसी रस्सी
मर जा डूब अतल जल।"[1]

---

१. लज्जा नाइ निर्लज्ज ठाकुर
लज्जा नाइ रे तर,
गलाय कलसी बाइन्दा
जले डूब्या मर।

वाह, मेरी प्रिया तो शब्द जोडकर छन्द बना लेती है।

दूसरे ही दिन आशमानी को उत्तर मिल गया :

कहाँ मिलेगी कलसी कन्या
कहाँ मिलेगी रस्सी,
तू है मेरी गहरी नदिया
डूब मरूँगा प्रेयसि ।[1]

आशमानी घडा लेकर नदी की ओर चली गई थी। उसके साथ एक-दो स्त्रिया और भी थी। वह जयचन्द्र की ओर देखकर हसी। उसने न जाने अन्य दोनो स्त्रियो से क्या कहा कि वे भी खिलखिला पडी। इन सबके पीछे फकिर चाद लाठी के घोड़े पर सवार चला जा रहा था, नगा-धडगा, धूल-सना।

जयचन्द्र सीधा आशमानी के घर की ओर चला गया। बासो के झुरमुट के पास कटहल के पेड़ के नीचे खाट बिछाए एक प्रौढ़-से सज्जन एकतारा लिए गा रहे थे .

"हृदय पीजरा के ओ पाखी आल्ला रसूल बोल ना।
भव मे आने-जाने का दु.ख तू क्या जाने ना,
दस इन्द्रियाँ सताती तुझको छह् रिपुओ को जाने ना।"[2]

प्रौढ-व्यक्ति की दृष्टि जयचन्द्र पर पडी। उन्होंने एकतारा बजाना बन्द कर कहा, "कहिए ठाकुर, मुझ म्लेच्छ का घर पवित्र करने कैसे आ गए !"

जयचन्द्र केवल धोती पहने था। बड़े-बडे केश, माथे पर चन्दन और गले में यज्ञोपवीत।

---

१. कोथाय पाबो कलसी कइन्या
कोथाय पाबो दड़ी,
तुमि हओ गहिन गाँग
आमि डूब्या मरि।

२. हृदय पिंजिरार पाखी आल्ला रसूल बोलो ना।
भबे आसा जावा कि यत्रणा, ता कि जानो ना,
आछे दश इन्द्रिय, रिपु छय जना।

"मैं···मैं तो यों ही···"

"कोई बात नहीं, बेटा ! तुम क्या सुन्धा गाव मे रहते हो ?"

"जी, काकाजी ।"

"आओ बैठो ।" प्रौढ सज्जन ने उठकर एक दूसरी खाट बिछा दी ।

"काकाजी, आपका भजन मुझे बहुत अच्छा लगा । एक और सुनाएंगे ?"

काकाजी ने एकतारा तुनतुनाया । कुछ देर आकाश की ओर देखते रहे । उन्होने मेघो की मृदु-मृदु गुजन के साथ धीरे-धीरे गाना प्रारम्भ किया

"मक्खन से भी जो नरम, आग से भी अति गरम
साधना मे जो उसका पा गया मरम
लोहा से दृढ गगन से महत्
निश्शब्द शब्द सुन हो जाता चेतन ।"[1]

गान के एक-एक शब्द में न जाने कैसा रहस्य, कैसा माधुर्य भरा था । जयचन्द्र अवाक् सुनता बैठा रहा ।

"काकाजी, आपकी वाणी तो मुझे वेद-वाणी-सी पवित्र लगती है ।"

"है, यह क्या कह दिया तुमने । म्लेच्छ और वेद ? बेटा, तुमने कालिदास पढा है ?"

"जी पढा है ।"

"कभी मुझे शकुन्तला-नाटक सुनाना ।"

आशमानी हुक्का सजाए हुई आ खडी हुई । इस बीच वह नदी से लौट आई थी ।

"अरे वाह, मेरी शकुन्तला तो यह आ खडी हुई ।"

आशमानी हुक्का देकर फिर लौट गई । उसकी पीठ पर लम्बे-लम्बे केश खुले पडे थे । चौडे पाड की साडी से वह सिर ढके थी । उसका मुह

---

१. जे धन ननी चेये नरम, आगुन चेये गरम .
साधने तार मर्म्म पेयेछे जे जन,
लोहा चेये दडो, गगन चेये बडो,
निश्शब्द शब्द शुने हय चेतन ।

गोल था। कपोल दर्पण-से चमक रहे थे, उनपर लाल कमल के फूलो की हल्की लालिमा थी। सुर्ख लाल पतले-पतले ओठो के बीच नन्हा-सा तिल था। जयचन्द्र ने सोचा, शायद शकुन्तला ऐसी ही सुन्दर रही होगी। आशमानी ने केवल एक बार भौहो का धनुष चढाकर जामुन-काली आखो का एक तीक्ष्ण कटाक्ष फेक दिया। इस कटाक्ष मे रोष का कितना अश था, जयचन्द्र समझ नही सका।

"काका जी, आपके घर मे कितने लोग है?"

"बस, यही एक बेटी है।"

"आपके और कोई नही है?"

"न, पास के ही घर मे मेरी बहिन का लडका आब्दुल्ला रहता है।"

"आब्दुल्ला?"

"हा, आब्दुल्ला। क्या उसे जानते हो?"

"जी नही।"

"ज़रा गरम मिज़ाज का मुसलमान है। हिन्दुओ को सह नहीं पाता। वह तो मुझे भी काफ़िर कहता है। यहा के काज़ी साहब का प्यादा है वह।"

"आप जिस प्रकार के गीत गाया करने है, यदि मै मुसलमान होता तो मैं भी आपको यही कहता।"

काका जी हंस पडे।

१०

मालो घडा लेकर नटी के तट पर गई। वह मयूरपंखी साडी पहने थी। उसके वक्ष पर कोई वस्त्र नही था, अंचल को ही चारों ओर से लपेटे थी। घाट पर कोई नहीं था। वह निश्चिन्ततापूर्वक जल ने पैर डुबाकर बैठ गई। बांहें उठाकर जूड़ा खोलते ही उसका वक्ष खुल गया। नहाने के बाद जब वह खड़ी हुई तो पतली कमर के खुले भाग और भीगी साडी से झलकते नितम्बो की शोभा निराली ही थी।

इस युवती को क्या पता कि एक दाढी-लुगी धारी लोलुप व्यक्ति केलो और तालो के झुरमुट से उसे क्रूर बाघ की भूखी आखो से देख रहा है।
छलकती कलसी लेकर मालो लौट गई।

"मालो बहू, कैसी हो ?"
माछरागा को देख मालो सकपका गई। माछरागा नाक मे नस्य (नसवार) ठूसकर मुस्कराई।
"हाय बहू, तेरे कैसे तो कोमल हाथ है। तू कैसे घर के ऐसे कठोर काम किया करती है ?"
माछरागा ने मालो के नखशिख की जो प्रशसा की, उससे मालो लजा गई, किन्तु उसे मन ही मन बडी पुलक हुई।
माछरागा आती रही, कभी उसके स्तनो की प्रशंसा, कभी पतली कमर की। मालो को यह अच्छा न लगता, किन्तु माछरागा की बातो मे वह मिठास थी कि मालो सह जाती।
माछरागा उसके पति के निठल्लेपन की निन्दा करने लगी, "कैसा मूरख है तेरा पति, इतना भी नहीं कमा पाता कि तेरी ऐसी रानी बहू को हाट-घाट का काम न करना पडे।"
एक दिन माछरांगा ने जो प्रस्ताव रखा, उससे मालो बाघिन-सी बिफर पडी, "पोडारमुखी,[1] अब कभी इधर आ गई तो गले मे जूतो की माला डालकर घुमाऊगी। कह देना अपने यार काज़ी से कि मै थूकती हू तेरी धन-दौलत और गहने-कपडो पर।"
माछरागा चली गई, आब्दुल्ला काज़ी का फरमान लेकर आ गया : "तुम्हारा ब्याह हो गया और तुमने अभी तक 'नजर मरिचा'[2] नही दी।

१. पोड़ारमुखी—जलमुँही।
२ नजर मरिचा—मध्ययुगीन यूरोप में भी इस प्रकार की प्रथा का प्रचार था। शुभरात्रि को कन्या पर शासक का अधिकार रहता था। आभिभावक कर देकर नव-वधू को छुड़ा पाते थे। इस कर का नाम था—Droit de seigneur. तान्त्रिक सहजिया गुरु, निम्न श्रेणी के मध्य 'गुरु प्रसादी' के नाम से इस जघन्य अधिकार का दावा करते थे।
—दीनेशचन्द्र सेन, 'बाग्लार पुरनारी', पृ० १५०।

सात दिन के भीतर पाच-सौ मुहरें जमा करो, नही तो तुम्हारे खेत-घर बेदखल कर दिए जाएगे।"

बेचारा कैवर्त्त कहा से देता नजर-मरिचा। काजी के आदमी आए। उन्होने झंडा गाड दिया और लूट-खसोटकर सारी सम्पत्ति से बेदखल कर गए।

बेनू कैवर्त्त ने मालो से कहा .

"तुम सुख मे पली हो, तुम मेरे साथ कष्ट नही भोग सकती। अपने भाइयो के पास चली जाओ। जब मै कमाकर लौटूगा, तुम्हे फिर अपने साथ रखूगा।"

"मैं कही नही जाऊंगी। मै तुम्हारा मुह देखते हुए सात-सात दिन का उपास कर लूगी। मुझे तुम्हारा चन्नामिर्ति[1] मिलता रहे और कुछ नही चाहिए।"

मालो के पाचो भाइयों ने कहा, "चल बहिन, तू मेरे साथ चल।"

"दादा, आप लोगो ने मुझे जिस घर मे डाल दिया है, अब तो वही मेरा काशी-वृन्दावन है।"[2]

काजी ने फिर परवाना भेजा—"जासूस से मालूम हुआ है कि तुम्हारे घर में सुन्दर नारी है। उसने दीवान साहब को भी बताया है। सात दिन के भीतर अपनी नारी को दीवान साहब के पास भेज दो। न भेजने पर तुम्हारी मौत टल नही सकेगी।"

सात दिन बीत गए।

आब्दुल्ला प्यादो का दल लेकर आया और बेनू कैवर्त्त को बांधकर ले गया। काजी ने उसे कब्र मे जिन्दा गाड देने का हुक्म दिया।

मालो के घर से कौडा पक्षी उड चला।

कब्र काफी खोदी जा चुकी थी। आब्दुल्ला कोड़े मार-मारकर बेनू से

---

१. चरणामृत

२. श्वसुर बाडीत थाकबाम आमि करियाछि मन।
 सेइत आमार गया काशी सेइत बृन्दाबन॥

ही उसकी कब्र खुदवा रहा था। कई दाढी-लुगीधारी प्यादे लाठी-भाले लिए बेनू से भद्दे मजाक कर रहे थे। बेनू को कब्र मे जिन्दा दफना देने के दृश्य को देखने की उत्तेजना से उनके मुह दमक रहे थे।

अब कब्र पूरी खोदी जा चुकी थी। आब्दुल्ला ने बेनू के गाल पर थप्पड मारा। उसकी धोती खोलकर नगा कर दिया और पैर पकड़ घसीटकर कब्र मे फेककर थूक दिया। प्यादो ने मिट्टी फेकनी शुरू की।

"जय दुर्गे, जय काली !"

प्यादो पर आक्रमण हो गया। जमकर लाठी-भाले चले। प्यादे भाग खडे हुए। आब्दुल्ला मुह के बल धरती पर पडा कराह रहा था। उसकी लुगी फट गई थी, दाढी नोच दी गई थी।

मालो के भाइयो ने मिट्टी हटाकर बेनू को निकाला। बेनू बडे साले के गले से लिपटकर रो पडा।

सभी बेनू के घर आए। बुढिया चीखकर रो उठी। प्यादो का दूसरा दल मालो को पकडकर दीवान साहब की हवेली मे पहुचा आया था।

दीवान सुगन्धित पान चबाता हुआ, कपडो मे सुगन्ध लगाकर आया। वह अपने हाथ में सुनहरा रूमाल लिए था। सुरमा लगी आखो मे बडा प्यार भरकर और अपनी खिचडी दाढी पर हाथ फेरकर दीवान बोला :

"प्यारी, तुम सोच मत करो। मैं तुम्हे अग्निपाट की साडी और हीरा-जडी कंचन-सोने की बेसर दूगा। तुम मेरी बीवी बन जाओ। और देखो, मैं तुमसे बडा हू, लेकिन जानती हो, खजूर जितना पुराना होता जाता है, उतना ही उसका रस मीठा होता जाता है, उतना ही उसका गुड़ स्वादिष्ट होता है।"

"मैंने तीन मास का एक व्रत किया है, दीवान साहब। तब तक मैं आपका छुआ नही खाऊगी और आपसे दूर रहूगी। इसके बाद आपकी बात मान लूगी।"

दीवान छटपटाता रहा। एक-एक दिन गिनता रहा। तीन महीने भी पूरे हो गए। वह मालो के आगे गिडगिडाने लगा :

"मालो जान, अब तो न तरसाओ। धरती छोडकर मेरी गोद मे आ जाओ। मेरे पलंग पर आओ न !"

"दीवान साहब, मैं आपकी गोद में कैसे आ सकती हू। जब भी मैं आपकी गोद मे आना चाहती हूं, मुझे अपने दोनों के बीच काज़ी खडा दिखाई देता है। इसके रहते मन का मिलन नही हो सकता।"

"हाय, मेरी कातिल, यह भी सही।"

दासिया मालो को निराश करने के लिए कहती, "तुम्हारा पति तो धरती मे गाड दिया गया है। अब तुम्हारा कोई सहारा नही है। क्यों नही दीवान साहब की सेज पर चली जाती ?"

मालो को अटल विश्वास था कि बेनू जीवित है, क्योकि उसका सिन्दूर मैला नही हुआ। उसके राम-लक्ष्मण शाखा चूर-चूर नही हो गए।

दीवान की आज्ञा से कोतवाल ने काज़ी को सूली पर चढा दिया।

"अब जाने-मन ! अब तो कोई रुकावट नही ?"

"है, मेरे मन पर मेरे स्वामी अभी भी छाए रहते हैं। वे कौड़ा पछी के शिकार मे बडे चतुर थे। यदि आप भी करके दिखाएं तो मैं अपने-आप आपकी गोद मे बैठकर आपकी दाढी मे मेहदी लगाऊंगी, अपने हाथ से पान खिलाऊंगी और और···"

मालो का कंठ अवरुद्ध हो गया, आखे झुक गईं। दीवान बिना नशा पिए झूम उठा। मेरी महबूबा चुम्बन लेने के लिए कहते-कहते शर्मा गई है।

मालो ऐसे शब्द के प्रयोग और अपनी बेबसी पर स्वत: को धिक्कार दे रही थी। इतने शब्द बोल जाने मे ही उसे कितना ज़ोर लगाना पड़ा था।

शिकार की ज़ोरदार तैयारिया हुईं। एक सुन्दर-सी पान-सी नौका मे दीवान मालो को लेकर चल पडा। रास्ते में वह मालो को समझा रहा

था—"प्यारी, मैंने झील के बीच मे कामटुगी बनवाई है। गर्मी की ऋतु मे हम-तुम उसीमे रहा करेंगे।"

अकस्मात् तीर-सी छुटती दो नावे आई। लाठी-भाले लेकर युवक टूट पडे। मालो छलाग लगाकर अपने भाइयो की नाव पर आ गई।

माछरागा ने कैवर्त्तों को धमकाया, "तुमने दीवान साहब से बैर करके अच्छा नही किया, वे काहन की काहन[1] सेना भेज देगे।"

कैवर्त्तों ने ऐंठकर कहा, "हम भी आसपास के सारे कैवर्त्त इकट्ठे होकर लडेगे। ये एक काहन सेना लाएगे तो हम दस काहन कैवर्त्त इकट्ठे हो जाएंगे।"

माछरागा ने दूसरा दाव फेका, "जो स्त्री मुसलमान के यहा खाती-पीती रही, उसके पलंग पर सोती रही, उसे घर मे रख लोगे ?"

माछरागा का यह दाव चल गया।

मालो की ओर से बहुत सफाई दी गई, किन्तु जाति-बिरादरी के लोगों ने कहा, "मालो असती हो गई है। वह मुसलमान के घर मे रही है, उसका अन्न खाया है। इसकी जाति नष्ट हो गई है।"

मामा और फूफा ने कहा, "हम बहू के हाथ का भात नही खाएंगे। बेनू को पराचिति करना होगा।"

पराचिति (प्रायश्चित्त) किया गया और मालो को घर से निकाल दिया गया।

फिर पाचों भाई आगे आए, उन्होने बहिन को साथ ले जाना चाहा। बहिन बोली .

"मेरी सास अन्धी और बहरी हो गई है। उसकी सेवा कौन करेगा ? मैं तो सोआमी के घर रहूगी। मैं घर के बाहर रहा करूंगी और घर के बाहर का काम—गोबर-पानी करती रहूगी।"

---

१. ८० कौडी—१ पण
१६ पण—१ काहन
—१२८० कौडियो का एक काहन (कार्षापण) होता था। यह मुद्रासूचक शब्दावली है, किन्तु सख्या बताने मे भी इसका प्रयोग होता था।

११

"बेटा, एक प्रकार से मैं भी ब्राह्मण हूं ।"

"कैसे काका ?"

"मेरे पिता के पिता कुलीन ब्राह्मण थे । वे अपने गांव वालो के साथ गंगा-स्नान के लिए नवद्वीप के लिए चले । रास्ते मे उन्हे वसन्त रोग (चेचक) हो गया । उनके साथी उन्हे रास्ते मे बेहोश पडा छोड गए । एक मुसलमान स्त्री को उनपर दया आ गई । उसने इनके मुह मे पानी डाला । इनका सारा शरीर फफोलो से भरा हुआ था । अपने घर ले जाकर उसने इनकी बडी सेवा की । जब ये अच्छे हो गए तो समाज ने इन्हे स्वीकार नही किया । इनकी पत्नी रोकर रह गई । वह मुसलमान बनने को तैयार नहीं थी । ये उसी मुसलमान महिला के पास लौट आए ।"

"क्या इस महिला का पति नही था ?"

"यह महिला भी कभी हिन्दू ही थी । एक शराबी मुसलमान इसे कही से बलात् भगा लाया था । जब महिला की जवानी उतर गई तो वह भाग खडा हुआ । इसी महिला के गर्भ से मेरे पिता का जन्म हुआ । मेरी मा मुस्लिम खानदान की ही थी । मेरी बहिन भी पछैंया मुसलमान को ब्याही गई थी, इसीलिए उसका बेटा आब्दुल्ला खाटी मुसलमान बनता है, वह पछैंया मुसलमानो की तरह अरबी-फारसी मिली हिन्दुस्तानी बोल लेता है ।"

"काका, मै मान गया, आपमें अवश्य ही ब्राह्मण-रक्त है तभी आपके गीतो में वह ध्वनि आती है ।"

"ऐसी ध्वनि वाले फक्कड गायक बाग्ला देश में कम नही हैं। उनपर बहुत अत्याचार हुए है । उन्हें उसी प्रकार सताया गया है, जिस प्रकार हिन्दुओ को सताया जाता रहा है ।"

"आप सस्कृत जानते है ?"

"मेरे पितामह ने पिता को घर पर संस्कृत पढाई थी। मुझे मेरी मा ने नही पढने दी। मैंने बाग्ला भाषा का साहित्य अच्छी तरह पढा है। मुझे कृत्तिवास, चंडीदास और मालाधर बसु बहुत पसन्द है। आला-ओल ने जायसी के पद्मावत का जो बांग्ला अनुवाद किया है, वह भी मैंने पढा है।"

"क्यो अब तुम्हारा इतना दुस्साहस कि तुम मेरे घर के चक्कर लगाने लगे। किसलिए यह सब ?"

"यह तो तुम अपने रूप से पूछो।"

"तुम भी मेरे आब्दुल्ला भाई जान से पूछ लेना। उनका चमचमाता छुरा देखा है ? तुम्हारे जैसे काफिरो की हड्डियां तोड़कर दिल का खून पीने के लिए वह छुरा सदा उतावला रहता है।"

"तुम्हारी कजरारी आखो का छुरा क्या कम पैना है ?"

बिना रुके जयचन्द्र वहां से चला आया।

मालो जयचन्द्र की चिट्ठी लाई थी। पहले भी एकाध बार ला चुकी थी। चन्द्रा सोच नही पाती क्या उत्तर दे।

मालो अब पहले की मालो नही रह गई थी। अब वह गृहस्थिन नही नौकरानी थी, दासी थी। वह जानवरो को चारा देती, उनका गोबर उठाती। आगन बुहारती। मिर्च-मसाला पीसती। नदी-घाट से पानी लाती। रूखा-सूखा खाती और कही किसी कोने मे आचल बिछा-कर सो जाती।

वह सौत की उतारी हुई पुरानी साडी पहनती। उसके शाखा गोबर-धूल मे सने रहते। केशो मे तेल न पडता, न वे ठीक से बांधे जाते। किन्तु माग मे सिन्दूर अवश्य रहता।

जयचन्द्र चिट्ठी मे कविताएं लिखकर भेजा करता था और कवि-ताएं मांगा करता था। चन्द्रा जयचन्द्र की याद मे विह्वल तो हो जाती थी, किन्तु उसका हृदय शब्दो मे कुछ कह नही पाता था।

उसने दो-चार पंक्तिया सोची थी, वही लिखकर मालो को दे दी।

जयचन्द्र ने पंक्तिया पढ़ी :

"जल को छूकर आनेवाला
पवन है कितना शीतल,
कच्चे नारिकेल का पानी
इससे भी अति शीतल।
उससे भी बढ़कर यौवन की
प्रीति मधुर है शीतल,
मनभावन पति मिले तो
उसका प्यार सभी से शीतल।"[1]

हा, है शीतल। शीतल ही नही, गंगाजल-सा पवित्र भी है। किन्तु इस प्यार मे वह मादकता नही, वह ऊष्मा नही जो नस-नस को झनझना दे। जिसका स्वाद पाकर मन झूम उठे।

जयचन्द्र आज अपनी नस-नस मे जिस पीर का अनुभव कर रहा है, उसके हृदय में जवानी का जो तूफान उठ खडा हुआ है, उसे कौन शान्त करे ?

सीता-सावित्री की परम्परा का निर्वाह करने वाली, शिवपूजा करने वाली चन्द्रा ? शीतल चन्द्रा, ठडी चन्द्रा ?

अथवा परिपुष्ट यौवनवती आशमानी ! जिसकी लचकती क्षीणकटि किसीकी भी बाहो को आवाहन दे उठे। जिसके चचल लोल कटाक्ष मृगछौने-से भोले न होकर खजर-से पेने है, जो कसौटी पर कसी कंचन-रेखा के समान हृदय पर चितवन की रेख आक जाते है; जिसकी मीठी मुस्कान मे महुए के फूलो की मादक गन्ध है, जिसके रूप का चिन्तन कर बांहें कसमसा उठती है, वक्षो से दीर्घ नि श्वास निकल जाते हैं।

आज पता नही कैसे देवता दयालु हो गए थे। बांसो के झुरमुट में छिपे-छिपे आशमानी ने जयचन्द्र को तिरछी दृष्टि से देखकर मुस्करा

---

१. एक तो शीतल जलेर हावा आर तो शीतल जानि।
ता हइते अधिक शीतल डाबेर मध्ये पानि ॥
ता हइते अधिक शीतल यैबने पिरीति ।
ता हइते अधिक शीतल मनोबांछार पति ॥

दिया ।

जयचन्द्र गुनगुना उठा :

"मुख पर बसती मधुर हँसी
पर मन मे भरा हलाहल,
तिरछी चितवन मार, कर
दिया मुझको भौचक घायल ।"[१]

जयचन्द्र को कुछ आशा बध गई थी । आशमानी को पाने की आतुरता उसे अधीर करने लगी और उसने खीझकर कमलपत्र पर लिखा :

"यह तो फागुन मास, प्यार मे
भैस के हिलते सीग,
तुम तो युवती नारी, कैसे
धरती मन मे धीर ?"[२]

आशमानी पढकर ऐसी खिलखिलाई कि उसके हास्य की झकार-ध्वनि से नदी-तट मुखरित हो उठा । भैस के सीग हिलने की बात उसे गुदगुदा गई ।

जयचन्द्र को उत्तर मिल गया :

"पुरुष भ्रमर-सा फूलो का मधु
इत-उत चखता फिरता
बासी छोड फूल टटके के
मधु के लिए ललचता ।"[३]

आह, यह नारी कितनी प्रीति-चतुर है । इसका भोग त्रिभुवन के सकल भोगो से बढकर है । वह इसे छोड नही सकता ।

---

१. मुख खानि हासि खुसी मन खानि बिष ।
आड नयने चाइया मोरे कर्ले हार दिश ।।

२. एहि त फागुन मासे मैषीर शिगा नडे ।
तुमि त युबती नारी प्राणे कत धरे ।।

३. पुरुष भ्रमरा जाति फुलेर मधु खाय ।
बासि थइया टाटका फुलेर मधु खाइते चाय ।।

जयचन्द्र पद्य का सहारा न लेकर गद्य पर उतर आया। आशमानी ने पढा, "यदि तुम मेरी प्रीति स्वीकार नही करती तो मै सदा के लिए देश छोड जाऊगा। यदि तुम मेरे प्राणो की रक्षा चाहती हो तो केवल एक बार हा कह दो।"

आशमानी ने कोई उत्तर नही दिया। वह नदी के घाट पर भी नहीं आई।

तीसरे दिन वह आई सहमी-सहमी। ऐसा लगा, वह ज्वर से उठी है। अपने हाव-भाव से उसने कोई भी सकेत नही दिया—जयचन्द्र को कमल-पत्र मिला—

"होती यदि चिडिया मै प्यारे
उड-उड जाती तुझ तक,
डार-डार पर बैठ देखती
तेरा चन्दा सा मुख।"[1]

१२

नदी-तट के फूल कई बार खिलकर नदी मे गिर चुके थे, जिन्हे नदी मीलो दूर बहा ले गई थी। दूर-दूर रहने वाले हृदय अनजाने ही निकट से निकट आते गए।

दातो से निचला ओठ दबाए आशमानी साडी निचोड रही थी। उसने पास खडे जयचन्द्र की ओर बिना देखे कहा :

"इस तरह रोज़-रोज़ मिलकर क्या तुम मुझे बदनाम करके छोडोगे ?"

"नहीं आशू, मैं तुम्हारी क्षति नही होने दूगा।"

"फिर तुम चाहते क्या हो ? ऐसा प्यार जो ब्याह मे न बदल सके, वह किस काम का ? हमारी जाति अलग-अलग, धर्म अलग-अलग।"

---

१. पक्षी यदि हइताम रे बन्धु, उड़िया उड़िया।
तोमार मुख देखताम बन्धु, डाले ते बसिया॥

"मैं क्या चाहता हू, मैं स्वयं नही जानता। बस, इतना जानता हूं कि तुम्हे देखे बिना मुझे चैन नही मिलती। पता नही तुमने कौन-सा जादू कर दिया है। मैं तुम्हें जीवन-भर नही भूलूगा।"

"किसी ब्राह्मणी को पत्नी बना लोगे, तब भूल जाओगे।"

"नही, नही, आशू।"

"मुझे बहुत डर लगता है।"

"तो यहा आना और तुमसे मिलना बन्द कर दू ?"

"नही, मैं यह नही कहती।"

"अच्छा प्रिया, यह बता दो तुमने मुझे भरपूर प्यार किया है ?"

"तुम यह क्यो पूछते हो ?"

"तुम्हारे मुह से सुनने मे सुख मिलता है।"

"ऐसा कही पूछा जाता है और पूछे जाने पर क्या उत्तर दिया जाता है ?"

"अच्छा, यही बता दो, जब मैं तुमसे पहली बार मिला था, तब क्या तुमने मुझे सच ही घृणा की थी ?"

"घृणा की होती तो उस दिन सारी रात तुम्हारे बारे में ही नही सोचती रहती।"

"तो तुम बिगड़ क्यो उठी थी ?"

"मैं क्या जानू, शायद मैं डर गई थी।"

"मै तुम्हे प्यार करता हू, यह तुमने कब जाना ?"

"जब तुम पहली बार मिले थे, तभी मैंने जान लिया था कि तुम क्या चाहते हो।"

"इसमे तुम्हारे जानने की विशेषता थोड़े ही है।"

"फिर किसकी है ?"

"जताने वाले की।"

"सीधे-सीधे ढग से भी तो जताया जा सकता है।"

"हा, और सीधे-सीधे ढंग से जाना भी जा सकता है, किन्तु स्त्रिया अपने नाज-नखरे दिखाने से बाज नही आती। मन-मन भावै, मुडी हिलावै। सीधे-सीधे ढग से जताया जाता तो उस समय ताव में आकर

तुम स्वयं पीट सकती थीं या अपने किसी आब्दुल्ला-साब्दुल्ला से पिटवा सकती थी ।"

आशमानी साडी को कई बार निचोड़ चुकी थी । वह उसे बार-बार पानी मे डाल देती और बार-बार निचोडती जाती ।

"आशू, क्या तुमने पहले भी किसीका प्यार अनुभव किया था ?"

"मैने तो नही किया । दो-चार लौडे जरूर ज्वार की चील की तरह मडराते रहे है, इनमें कोई मेरा ध्यान नही खीच पाए ।"

"बस, मडराते ही रहे, पास आने का साहस नही किया ?"

"युवको मे भोलापन होता है । पास आने का साहस दुनियादारी देखे हुए लोग करते है । मेरे फूफा डोरे डालने की चेष्टा करते रहे है ।"

"तुम्हारे फूफा ?"

"इसमे आश्चर्य क्या ? हमारे यहा बाप और सगे भाई को छोडकर किसीसे भी शादी की जा सकती है । सगे चाचा-फूफा तक अपनी बेटी जैसी युवती को भुक्खड आखो से देखते है । इस नाते तुम्हारे यहा लड़किया अधिक भाग्यशालिनी है ।"

"किन्तु ये क्या कर लेगे ? इनके तो विवाह हो चुके होते है ।"

"हा, यदि चार बीवियो की सख्या अभी पूरी नही हुई है तो ।"

"फूफाजी क्या करते थे ?"

"टकटकी लगाए देखते रहते थे, कभी मौका पाकर हाथ छू देते थे । कभी गहने-कपडो का लोभ देते थे ।"

"तुमने कुछ नही कहा ?"

"मैंने कहा—फूफाजी, तुम्हारी तो इतनी वयस हो गई है ।"

"वे क्या बोले ?"

"बोले कि मिर्च जितनी लाल होती जाती है, वह उतनी ही चरपरी होती जाती । इसी प्रकार आदमी वयस मे जितना बढ़ता जाता है उतना ही अधिक रस-रंग देता है ।"

"ह-ह-ह । आशू, तुम्हारे फूफा तो पूरे रसिया निकले ।"

"खैर, फूफा तो निराश होकर पश्चिम में अपने देश लौट गए । अब उनका बेटा मुझे बहुत विरक्त करता है ।"

"कौन ? आब्दुल्ला भाई जान ?"

"हा।"

"उनका ब्याह तो हो चुका है ?"

"दो ही तो हुए है। एक बीवी यहा रहती है और एक उस शहर में, जहां काजी साहब रहते है।"

जयचन्द्र जब नदी-तट पर पहुंचा आशमानी नहा-धोकर तैयार बैठी थी। उसने साडी धो ली थी। कलसी भी भरी हुई थी।

"आशू, क्या तुम बहुत देर से आई हो ?"

"हा, जय।" आशमानी की काली आखो मे दर्द था, "तुम मुझसे कहते थे कि न जाने मैंने कौन-सा जादू तुमपर डाल दिया है। ये शब्द तो मुझे कहने चाहिए थे।"

"तुम्हे डर नही लगता ?"

"लगता क्यो नही, किन्तु तुम्ही तो मुझे बरबाद कर रहे हो। क्या तुमने सुना नही :

"नारी का यौवन है ऐसा
जैसा ज्वार का पानी,
बाहर पथ पर निकल पडे
तो होती कानाकानी।[१]

"अब तो तुमने अपने प्यार के बल पर खीच लिया है। तुमने कूल-किनारा तोडकर मुझे बरसात की उफनाती नदिया बना दिया है। देखो, हाथी के दात भीतर नही जा सकते। इसी तरह तुमने मुझे घर से बाहर कर दिया है। अब मेरा मन घर में नही रहता।"

"आशू, प्राणसखी !"

"नही, दूर रहो। इतने पास मत आओ। मेरे क्वारेपन का अपमान-मत करो, जय।"—आशमानी ने कलसी उठाई और दयनीय दृष्टि से देखती चल दी।

---

१ नारीर यैबन जेमन जोआरेर पानि।
पन्थे वाहिर हइले लोके करे काना कानि।।

"सखी, तुम मुझे केवल जय ही कहोगी ?"

"तो क्या कहूं ? सोआमी[1]? न बाबा ।" वह हस दी, 'अच्छा, बुरा न मानो । आज से बन्धु[2] कहूगी, या कहूगी चोखेर काजल[3] ।"

जयचन्द्र ने कई बार आग्रह किया था, "मै प्यार मे डूबकर तुमपर गीत लिखता हूं, तुम्हे रस से छलकते हुए पत्र लिखता हूं, किन्तु तुम तो अब मौन हो गई हो । तुम भी कुछ लिखकर दो न !" आशमानी ने शायद लोकगीतो से कुछ पक्तिया चुनी और लिखकर दे दी :

"तुम भँवरा हो मेरे बन्धु
मै हूँ वन का फूल,
प्यारे, तेरे लिए छोड़ती
जाति-धर्म का कूल ।
आओ, आओ, प्यारे साजन,
आओ, खाओ पान,
तालपख से हवा डुला दूँ
जुडा जाएँगे प्रान ।

तुम्हे खिलाऊँगी मैं प्यारे
गन्ध फूल का सब मधु
तेरे मुँह में दूँ निचोड प्रिय,
अपने यौवन का मधु ।"[4]

---

१. सोआमी—स्वामी ।

२. बन्धु—बाग्ला भाषा मे इसके दो अर्थ है—मित्र और प्रियतम ।

३. चोखेर काजल—आख का काजल अर्थात् अत्यन्त प्रिय ।

४. तुमि रे भमरा, बन्धु, आमि बनेर फुल ।
तोमार लाइगा रे बन्धु, छाडबाम जाति कुल ।।
आइस आइस बधु, खाओ रे बाटार पान ।
तालेर पाखाय बातास करि जुडाक रे परान ।।

जतेक फुलेर मधु, बधु रे, तोमारे खाबाइबो ।
यौवन निगडाइ मधु मुखे तुल्या दिबो ।।

घर के पोखर के वृक्ष-पुंज मे बछड़े से खेलने के बहाने दोनो मिल गए ।

"प्राणसखी !"

"चोखेर काजल ?"

"वह दे दो न ।" जयचन्द्र के स्वर मे मिठास-भरा आग्रह था ।

"क्या ?"

"वही, मेरे मुह मे यौवन का मधु निचोड दो न ।"

"देखो, तभी तो मैं कुछ लिखती नही । तुम खिल्ली उडाओगे तो मैं कभी कुछ लिखकर नही दूगी ।" —तुनक गई आशमानी ।

"खिल्ली नही उडा रहा हूं । जहा वह पाजी नन्हा-सा तिल है, वहां का···"

"बस, बस । चुप रहो । यही तो तुम पुरुषो मे औगुन है कि उंगली पकडकर पहुचा दबोचना चाहते हो । मैं नही बोलूगी तुमसे । तुम्हें प्यार नही, नारी का तन चाहिए ।"

जयचन्द्र ने मनाने की चेष्टा की, क्षमा मागी, किन्तु कदम्ब के पेड़ से सटी आशमानी की भौहें सीधी नही हुईं ।

"बोलो न सखी, अब मैं अधिक देर नही रुक सकता । आज क्या मन मैला करके ही जाऊंगा ?"

आशमानी न पिघली । पेडो के ऊपर उडता हुआ एक पंछी जोर से बोल पडा :

"बउ कथा कओ, बउ कथा कओ ।" अर्थात् बहू, बात करो, बहू बात करो ।

दोनो ही अकस्मात् हंस पडे ।

"आशमानी, कहा हो मा ?"···बाउल मिया ने पुकार लगाई ।

कलसी को पानी मे नचाती हुई आशमानी लोकगीत गुनगुना रही थी । जयचन्द्र रस लेकर सुन रहा था ।

"प्रियतम, मेरे घर मे खाट-पलंग तो है नही, तुम आओगे तो लेटने के लिए चटाई बिछा दूगी···"

"ऐसे लेटे लेटे प्यारे
पाओगे तुम क्लेश,
दूँगी बिछा फर्श पर चिकने
घूँघरवारे केश।
केश-बिछौना पर भी साजन
मिले नही यदि कुछ सुख,
अबला के सीने पर सोओ
निधडक रख अपना मुख।
आँसू से मैं पैर पखारूँ
केशो से पोछूँगी,
माथे के सिन्दूर से स्वामी
चरणो को रँग दूँगी।"[1]

"अच्छा, मान लो हमारी-तुम्हारी शादी हो जाए, तो तुम मुझे क्या सुख दोगी?"

"मैं?"

"हा, तुम।"

"मै क्या बताऊं?"

"कुछ तो बताओ।"

"पूस मास मे जब खेत धान से छा जाते है, तब मिया लोग खेत रखाते हैं। थका हुआ मर्द जब घर लौटता है तो बीबी गरम-गरम भात परोसे मिलती है। मैं भी तुम्हारे लिए धुआ देता सुगन्धित भात तैयार किया करूंगी, जिसे तुम गाय के घी और रोहू मछली के साथ खाना।

---

१ एइ भाबे शुइया शुइया, रे बन्धु, तुमि पाओ क्लेश।
मेजे ते बिछाइया दिमू चाचर चिकन केश॥
केशेर बिछाने, बन्धु रे, सूख नाइ रे पाओ।
अबुलार बुके शूइया निरले घुमाओ॥
चक्षेर जले धूइया रे पाओ, बधु रे, केशे ते मुछावो।
सिथानेर सिन्दूर दिया चरण राँगाइबो॥

मैं तुम्हारे लिए हुक्का मे पानी भरकर, तम्बाकू सजाकर ले आया करूंगी।"

"अरे, तो तुम मुझसे खेती भी कराओगी ?"

"मेरे बाबा के पास धान के कई खेत है। जो जमाई बनेगा, उसे ही देख-रेख करनी पडेगी। चाहे वह खुद देख-रेख करे या नौकर से कराए।"

"यह तो हुआ पूस, माघ मास मे क्या करोगी ?"

"माघ मास के कपा देने वाले जाड़े मे जब तुम धान के खेत मे पानी देने जाओगे···"

"मैं नही जाऊगा पानी-वानी देने।"

"वाह, तो क्या शादी हो ही गई, जो तुम पानी देने नही जाओगे ? तुम्ही तो कहते हो कि मान लो ··"

"अच्छा, फिर क्या करोगी ?"

"जब तुम पानी देने जाओगे, मै आग लेकर आऊंगी। दोनो मिलकर तापेगे।"

"बस तापते ही रहेगे ?"

"तो और क्या करेगे ?"

"आग की गरमी से नही, तन की गरमी से तापेगे।"

"इतने पास मत आओ। देखो, दूर रहा करो। कोई आ जाएगा।"

"मेरी आशू ! इतना तो न तडपाओ। बस, एक बार, केवल एक बार अपने ओठ···बस और कुछ नही।"

आशमानी ने अपनी कलसी उठाई। जयचन्द्र ने छीननी चाही। वह बिजली-सी उछलकर दूर जा खडी हुई। नदी-तट की ओर जाते हुए उसने कटाक्ष का भरपूर प्रहार किया। जयचन्द्र ने गिडगिड़ाकर उंगली उठाकर केवल एक चुम्बन की आकाक्षा प्रकट की। आशमानी ने जीभ और अगूठा दिखा दिए। उसकी इस मोहक मुद्रा पर जयचन्द्र और भी रीझ उठा।

वह रुकी नही। घडा भरकर सुपाडी पेड की डाल की तरह लहराती चली गई। जयचन्द्र की ललचाती दृष्टि की ओर कभी ताककर वह भौहे उचकाकर जीभ दिखा देती।

प्यासा जयचन्द्र और भी तड़प उठा :

कमल पंखुडी-से अधरों पर
नन्हा नटखट-सा तिल,
कब चूसेगा पीर हृदय की
मम अधरो से हिलमिल ?

१३

गांव की सभी स्त्रिया एकत्र हुई । नारियल के तेल से सुवासित केश और नये वस्त्रो की सुगन्ध बडी मीठी लग रही थी । महिलाओ मे पान वितरित किए गए ।

चन्द्रा का मंगलाचरण हो चुका था ।

जयचन्द्र के मामा पुरोहित और नाई के साथ आकर आशीर्वाद दे गए थे । अल्पना रचकर मगलघट की स्थापना की गई थी, जिसपर दीपक जल रहा था । चन्द्रा एक चित्रित पीढी पर बिठाई गई थी । जयचन्द्र के मामा ने साडी, शाखा और सिन्दूर देकर आशीर्वाद दिया था ।

नई बहुएं और कन्याएं पुलक-पुलककर तैयारिया कर रही थी। आगन मे अल्पना रंगने के लिए दौडधूप होने लगी । पचरग तैयार किए गए । ईंट का चूरा बनाकर लाल रग, पिसी हुई हल्दी से पीला रग, बेलपत्र पीसकर हरा रंग, चावल पीसकर श्वेत रंग और कोयला पीस-कर काले रंग तैयार किए गए ।

वृत्त, पुष्प, शंख आदि आकृतियों को मिला-मिलाकर अल्पनाए उभ-रने लगी ।

पानखिलि प्रथा मनाई जा रही थी । पीतल के थाल मे चारो ओर पान सजाए गए, बीच-बीच सुपाडी और सरौती रखी गई । छोटी-छोटी कटोरियों में तेल, दही, सिन्दूर, शकर, बतासा और धान-दूर्बा आदि रखे गए ।

चादी की पांच पतली कीले सुनार से बनवा ली गईं । वंशीदास सम्पन्न होते तो सोने की बनवाते, तब इनकी संख्या भी अधिक होती ।

पुरोहित ने पाच पानो को समेटकर उनमे चादी की कीलें लगाईं। शेष पानो मे सधवाओ ने बास की कीले लगा दी। पानो पर सिन्दूर-बिन्दु लगाकर सधवाओ मे वितरित किया गया। छोटे-छोटे बच्चो को बतासे दिए गए।

किसी स्त्री ने उलुध्वनि की, सारा आगन गूज उठा। एक बार सभी स्त्रिया हाथ का काम छोडकर उलुध्वनि कर उठी। चन्द्रा की बौदी ने शख फूक दिया।

चादी की कील वाले पानो को थाली मे रखकर रंगीन गमछे से ढक दिया गया। यह थाली चन्द्रा की माता सिर पर रखकर मन्दिर मे दे आई।

पान देकर विवाह मे सम्मिलित होने के लिए दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा आदि देवी-देवता निमन्त्रित किए गए।

चन्द्रा की मा और भाभिया राम-सीता, कृष्ण-रुक्मिणी और शिव-पार्वती के विवाह के गीत गाने लगी। गीत-गीत मे ही वे कन्या को गृहस्थी के उपदेश दे रही थी।

चन्द्रा के हृदय मे आनन्द नही समा रहा था। उसकी तपस्या पूरी हुई थी। हृदय के उमड़ते भावो को वह व्यक्त नही कर पा रही थी। कठोर सयम के कारण ओठ मौन थे, किन्तु आखे उल्लास-चचल थी। पास से निकलती भाभिया और सखिया उसे गुदगुदा जाती अथवा चिकोटी ले लेती।

स्त्रियो ने शकर का पूजन कर देवी दुर्गा, एक चूडा देवी और बन-दुर्गा आदि का पूजन किया।

विवाह के एक दिन पूर्व अधिवास की प्रथा मनाई गई। प० वशी-दास ने व्रत किया, कन्या-सम्प्रदान के समय तक इस व्रत का पालन करना होगा।

महिलाए आम के पत्तो सहित घड़ा लेकर जल ले आईं। उलुध्वनि-शखध्वनि के मध्य चन्द्रा को स्नान कराया गया। चन्द्रा सोच रही थी कि उधर जयचन्द्र को भी स्नान कराया जा रहा होगा। स्नान के पश्चात् चन्द्रा को नूतन शंख-चूडी और साड़ी पहनाई गई।

एक छोटी सिल पर चन्द्रा की मा आदि पाच सधवाएं सिर पर ओढनी डालकर कुछ पीसने लगी। पुरोहित ने पिसे पदार्थ का तिलक चन्द्रा के मस्तक पर अंकित कर आशीर्वाद दिया।

विवाह के दिन कौवा बोलने के पहले मुह-अधेरे स्त्रियां पानी भरने निकल पडी। इस चोर पानी को लाते समय भी महिलाओ के मधुर गीत गूजने लगे। बार-बार उलुध्वनि होने लगी।

पडित वंशीदास स्नान कर और चदन लगाकर मंडप के नीचे बैठे। नान्दीमुख सम्पन्न हुआ।

सधवा स्त्रियो ने धरती खोदी, मिट्टी से बेदी बनाई। पाच सधवा स्त्रियो ने तेल-सिन्दूर से पूजन किया।

सुहाग मागने के लिए स्त्रियो का दल निकल पडा। चन्द्रा की मां घूघट डालकर चित्रित कुला (सूप) मे मागलिक द्रव्य रखकर उसे माथे पर उठाए हुए चली। इसपर एक घी का दीपक भी जल रहा था। चद्रा की चाची लोटा लेकर चली। पहले मन्दिर फिर जाति-बन्धु और पडोसियो के घर से सुहाग मागा गया। घर-घर से जल एकत्र किया जाने लगा। गाव के बच्चे भी अत्यन्त प्रमुदित थे। वे अपनी माताओ के पीछे लगकर उनकी नकल करते हुए उलुध्वनि करने लगते थे। घर-घर से एकत्रित जल से चन्द्रा को स्नान कराया गया।

सखियो ने नाना रग और जाति के सुन्दर फूल एकत्र किए थे। चन्द्रा को अनेक प्रकार से सजाया जा रहा था। उसके माथे पर अलका-तिलका[1] रजित कर दी गई थी। सूक्ष्म रेशमी नेत्र-वस्त्र की साडी और कांचुली पहना दी गई थी। हल्दी लगाकर स्नान कराए जाने से चन्द्रा का खरा गोरा रग चम्पक-वर्ण का हो गया था।

चन्द्रा का निर्दोष प्यारा बचकाना मुह और उसपर दैवी आलोक का प्रभा-मंडल देख मां गद्गद हो गई। उनकी इच्छा हुई झपटकर चन्द्रा को गोद में उठाकर मुह चूम लें। आनन्द के आसू उमड पड़े, जिन्हें आचल से छिपाती हुई वह अन्य आवश्यक कार्यों मे लीन हो गई।

---

१. अलका-तिलका—मुख पर अकित की जाने वाली कुकुम और चन्दन की पत्र-रचना।

ढोल-दगड-मादल का रोर।
उलुध्वनि, शखध्वनि
स्त्रियो के मंगल गीत
बच्चो का शोर।

सखिया माला गूथने में सारी शक्ति, सारा कौशल लगाए है। कुछ सखिया विवाह मे प्रयुक्त होने वाली प्रत्येक सामग्री को चित्रित करने मे लगी है।

एक सुखद उत्तेजना से चन्द्रा की छाती धडक रही है। वह अपने गुरुजनो की उपस्थिति मे बार-बार लज्जा का अनुभव करती है। बार-बार उसके कपोल कानो तक लाल हो उठते है।

"दीदी मोनी! आहा, तुम कितनी प्यारी, कितनी मीठी लग रही हो। शुभदृष्टि के समय जमाई की आखो मे चकाचौंध लग जाएगी। फूलशय्या की रात तो वे अपना दिल ही लुटा बैठेगे।"

"फूलशय्या के समय क्या होता है मालो बौदी?"

"क्या बताऊ दीदी मोनी?"

"जो तुम्हारे साथ बीता वही बताओ।"

"तुमने अपनी बड़ी-छोटी बौदीदियो से नही पूछा?"

"वे गुरुजन है, मै उनकी बच्ची जैसी हू। तुम मेरी सखी हो। पता नही, तुमसे क्यो सब कुछ खोलकर बात करने की इच्छा होती है।"

"जमाई मिल जाएगे, फिर यह इच्छा नही होगी।"

"धत्, बताओ न!"

"फूलशय्या की रात फूलो से पलग सजाया जाता है। वर-वधू दोनो साथ-साथ बैठते है।"

"वेनू दादा ने तुम्हारे साथ बैठकर क्या कहा था?"

"उन्होने मेरा घूघट हटाकर चूम लिया था।"—मालो खिलखिला उठी। चन्द्रा भी हसी, किन्तु उसको दुत्कारकर सामने से हट गई। मालो भी भाग गई। फूलशय्या की बात से चन्द्रा का सारा शरीर सिहर गया। उसका हृदय ज़ोर-ज़ोर से धडकने लगा।

वह सोच रही थी, जयचन्द्र कितने सुन्दर लग रहे होगे। जब वे

मेरे घर आएंगे, मा दूध से उनके हाथ धुलाएंगी, घी के दीपक से उनका मुह देखेगी। मण्डप के नीचे वर-कन्या को साथ-साथ बिठाकर ऐसा प्रबन्ध किया जाता है कि वर-कन्या एक-दूसरे को प्रथम बार देखते है और कोई न देख सके, इसके लिए आड कर दी जाती है। यह प्रथा 'शुभदृष्टि' कहलाती है। वह जयचन्द्र को कई बार देख चुकी है किन्तु वधू के रूप मे तो प्रथम बार देखेगी। शुभदृष्टि के समय उसकी दृष्टि ऊपर कैसे उठेगी। जयचन्द्र की ओर उससे ताका नही जाएगा।

बड़ी बौदी सूत मे दूब की पाच पत्तिया बाधकर उसपर हल्दी लगा रही थी। यह चन्द्रा के बाये हाथ मे बाधा जाएगा। जयचन्द्र के भी दाये हाथ मे ऐसा ही मगल-बंधन बाधा जा रहा होगा।

चन्द्रा को पीढी पर बिठा दिया गया। नाइन आलता ठीक करने लगी। उसने चन्द्रा के कोमल चम्पाफूल-से चरणो पर अभी एक रेख ही खीची थी कि सुन पड़ा·

"बन्द करो ढोल-ढाक, बन्द करो गीतो का हुडदग, फेक दो मालाएं।" उत्तेजित श्रीवल्लभ आवेश मे काप रहे थे।

"क्या हुआ ? हाय क्या हुआ ?"

"जमाई दुराचारी हो गया।"

"क्या हुआ ? क्या किया उसने ?"

"उसने चौदह पीढियो का नाम डुबो दिया।"

१४

फकिर चांद के हाथ से चिट्ठी पाकर जयचन्द्र घबडा गया। घर में उलुध्वनि और शंखध्वनि हो रही थी। मामा और मामी दोनों विवाह की तैयारी मे व्यस्त थे। स्त्रिया मगलाचार कर रही थी। वह सबकी आख बचाकर नारियल और केला वृक्षो के कुज मे आ खडा हुआ। वह रेशमी धोती और पीला यज्ञोपवीत धारण किए था, हाथ में मगल-सूत्र बंधा था।

हल्दी के साथ स्नान करने से चयचन्द्र का शरीर अत्यन्त पवित्र और मोहक लग रहा था। आशू को लगा यह जयचन्द्र उससे बहुत दूर चला गया है। उसे छूने का भी उसे साहस नही हुआ। उसने आसूभरी आखें उठाकर कुछ कहना ही चाहा था कि छोटी-सी दाढ़ी रखाए एक लुगी-धारी व्यक्ति आ खडा हुआ। वह कडककर बोला ·

"यहा अकेले मे क्या हो रहा है ?"

"कुछ नही।"

"कुछ कैसे नही। क्या इस लड़की से शादी करोगे ?"

"शादी ?"

"शादी ? बडे भोले हो ? क्या मुसलमान लड़कियो की इज़्ज़त नही होती ? घर पर शादी का शंख बज रहा है। शादी करोगे हिन्दू लडकी से और रडीबाजी करोगे मुस्लिम लड़की से, क्यो ?"

आब्दुल्ला की दाईं बाह मालो के भाइयों की मार के कारण अभी भी सीधी नही हुई थी। उसने बाये हाथ से जयचन्द्र का यज्ञोपवीत झटक-कर तोड दिया। जयचन्द्र की आखे क्रोध से धधक उठी। उसकी कसी हुई मास-पेशियो वाली भुजाए फडक उठी। आब्दुल्ला उसे घूरता हुआ, दो-चार डग पीछे हटकर बोला ·

"तुमने आशमानी को जो मुहब्बत की चिट्ठी लिखी थी, मैंने उसे काजी साहब के पास भेज दिया था। काजी साहब बहुत खफा हैं। उन्होने तुम्हे बाधकर लाने के लिए चार प्यादे भेजे है। दो प्यादे तुम्हारे मामा के दरवाज़े पर और दो आशमानी के घर पर तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं। अब तुम्हारा शुभ-विवाह नही, निकाह होगा।"

आब्दुल्ला चला गया। जयचन्द्र की आखो के आगे सारा ब्रह्माण्ड घूम गया। गिरने से बचने के लिए उसने नारियल के पेड़ का सहारा ले लिया।

श्रीवल्लभ रुधे गले से बोले :

"उसने तो चौदह पीढियों का नाम डुबो दिया। वह तो यवनी के प्रेम मे फंसकर धर्म बदल बैठा।"

माला गूथते हुए हाथ थम गए, उलुध्वनि करते कंठ रुक गए । ढोल-ढाक पीटने के लिए उठी काठिया शिथिल हाथो मे झूलती रह गई ।

एक अभेद्य सन्नाटा, हवा जैसे थम गई । फिर सन्नाटे को चीरकर उठते हुए असख्य रुदन-स्वर ।

वशीदास के कन्धो पर पडा रामनामी दुपट्टा खिसककर धरती पर आ गिरा । वे माथा पकडकर धूल मे बैठ गए ।

चन्द्रा न हिली, न डुली । न उसके अधरो पर हास, न आखो मे आसू । मानो अटल चट्टान हो ।

विवाह के पवित्र वस्त्रो मे शृ गार किए चन्द्रा ऐसी लगी मानो विसर्जन के दिन गगा मे डूबती हुई दुर्गा की पवित्र प्रतिमा हो ।

सुरमा के प्रयोग से आशमानी की आखे और भी कजरारी हो उठी थी । उसके कपोलो पर लालिमा और भी गहरा उठी थी । वह नाक में फूल और नथ पहने थी । नथ मे चुन्नी-मणिया और मोती थे । उसके गले मे चन्द्रहार और सुलतानी मुहरो की माला थी । वह पैरो मे गुजरी और माथे पर सोने का तारा धारण किए थी । उसने केशो का जूडा बनाकर सोने का भौरा और चम्पा का फूल खोसा हुआ था । नये-नये कपडो के साथ इत्र की भी सुगन्ध उठ रही थी ।

दुलहिन के वेश मे आशमानी जितनी उल्लसित थी, जयचन्द्र उतना ही उदासीन था । उसकी आखो मे सूनापन झांक रहा था, जिसे छिपाने के लिए वह ऊपर-ऊपर से मुस्कराने का निरन्तर प्रयास करता रहा था । इस समय एकान्त मे उसने यह मुखौटा भी उतार दिया था ।

"क्या बात है, क्या तुम शादी करके सुखी नही हो ?"

"नही, ऐसी बात तो नही ।"

"फिर मन मारे क्यों बैठे हो, क्या चन्द्रा की याद आ रही है ?"

जयचन्द्र चौक उठा, हड़बड़ाकर बोला, "मैं लोगो को मुह कैसे दिखाऊगा ?"

"अभी किसीको मुह दिखाने की ज़रूरत नही । मै अपने अंचल की छांह में तुम्हें छिपा लूगी ।"

"कब तक छिपाए रहोगी ? घर-गृहस्थी का प्रबन्ध नही करना होगा ?"

"जब तक तुम्हारा सकोच दूर नही होगा, छिपाए रहूंगी । जब तक हमारे खेतो मे धान होते रहेगे, गाय दूध देती रहेगी और मेरे तन के ये गहने रहेगे, तब तक तुम्हे सोचने की जरूरत नही है । लो पान खाओ ।"

आशमानी नारियल के पेड से डाब तोड लाई । उसका पानी निकालकर उसीमे उसने चावल पकाए । केले का पत्ता उल्टा रखकर उसने भात परोस दिया । गमछे मे बाधकर दही लटका रखा था, वह भी दिया ।

"पत्ते की उल्टी और क्यो परोसा ?"

"उल्टा कहा, यही तो सीधा है । जब पत्ता पौधे मे लगा होता है, तो ऊपर की ओर ही तो धूल-सूल जमती रहती है । हिन्दू उसी ओर भात रखकर खाते है । नीचे की ओर का पत्ता साफ रहता है, मुसलमान उस ओर खाते है ।"

जयचन्द्र फीकी हसी हंसा ।

"मुसलमानो की सब बातें उल्टी । वे तबा भी उल्टा चढाते है । तुम मुझसे सब उल्टे काम कराओगी क्या ? सिर की चोटी कटवा ही ली, अब क्या ठुड्डी पर चोटी रखने के लिए कहोगी ?"

"तुम ठुड्डी पर थोड़ी-सी दाढी रखा लो तो आब्दुल्ला भाई साहब की दाढी से तुम्हारी दाढी सुन्दर लगे ।"

"लगता है तुम दाढी के स्पर्श की पहले से अभ्यस्त हो ।"

"दुत् ।"

"या इलाह इलल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह ।"

अजान हो गई । आशमानी ने अपने सिर का एक केश सोते हुए जयचन्द्र की नाक पर धीरे-धीरे रगडा । सोते-सोते जयचन्द्र ने नाक सिकोडी । आशमानी ने फिर उसी प्रकार उसकी नाक खुजलाई । किसी कीडे की सभावना से जयचन्द्र ने अपनी नाक टटोलनी शुरू कर दी । वह फिर नीद में खो गया । इस बार आशमानी की शरारत पर जयचन्द्र ने ऐसी हास्या-

स्पद मुद्रा बनाई कि वह खिलखिला पडी।

"अच्छा, तू है नटखट।"

"उठोगे नही ? अजान हो गई। नमाज पढा करो।"

"यह कुलीन शास्त्रज्ञ ब्राह्मण नमाज पढने के लिए मुसलमान नहीं बना है।"

"वह ठीक है, तुम्हे मेरे लिए मुसलमान बनना पडा। जब बन गए हो तो तुम्हे इसी बिरादरी मे रहना है। इसकी रीति-नीति तुम्हे माननी ही चाहिए। आदत डालने के लिए दिन मे एक ही बार नमाज़ पढ लिया करो।"

"सबके सामने नही पढ़ूगा।"

"क्यो ?"

"जाने कैसा लगता है, शर्म लगती है।"

"धीरे-धीरे शर्म छूट जाएगी।"

"मुझे सिखाएगा कौन ?"

"मैं सिखा दूगी।"

लेटे-लेटे जयचन्द्र ने खाट से नीचे हाथ लटकाकर धरती का स्पर्श किया :

"समुद्रवसने देवि ! पर्वतस्तन मण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं ! पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥"

"देखो, यह सब मत बका करो। आब्दुल्ला भाईजान बहुत नाराज़ होगे।"

"उस साले की ऐसी-तैसी।"

"व्यर्थ के बखेडे से क्या लाभ। तुम मन ही मन चाहे जो कह लिया करो, किन्तु चिल्ला-चिल्लाकर हिन्दूपन मत प्रकट किया करो।"

"बाबा भी तो···"

"तो बाबा से ही ये लोग कहां प्रसन्न हैं।"

जयचन्द्र की आंखे अस्वाभाविक रूप से लाल रहती थी। वह शायद रात को जाग-जागकर चुपके-चुपके रोया करता था। उसके गाल पीले

पड गए थे। आंखो के आसपास कालिमा आने लगी थी। आशमानी कली-सी चटकती चली गई और जयचन्द्र पूरे खिले गुलाब-सा मुरझाता गया।

१५

चन्द्रा की मां यह आघात सहज रूप मे नही सह सकी थी। उन्होने चारपाई पकड ली थी। तेज़ ज्वर था। आखे जल रही थी। आंसुओ की धार बह रही थी।

"देखो तो, इस विष-बुझे छोकरे को। कैसा गौ बनकर आ जाता था। यह तो गौ के चाम मे भेडिया निकला। हमारी लड़की मे क्या दोष था ? क्या वह स्वय मेरी लडकी के आसपास नही मंड़राया ? क्या मेरी लडकी सुन्दर नही है, गुणवती नही है ? क्या उस राक्षस ने मेरी लड़की के रूप-गुण और उसके नारीत्व का अपमान नही किया है ? कही हल्दी-चढी लडकी को छोडकर कोई पराये समाज की लडकी ऐसे अपना लेता है ! धिक्कार है ऐसे पापी को ! इसे नरक मे भी स्थान न मिले ! हाय !"

माथा दबाती चन्द्रा बोली :

"मां, किसीको कोसने से क्या मिल जाएगा ? जो नही हो सका, उसके विषय मे सोचना ही क्या।"

मा अपनी बेटी के वचन सुन और भी बिलख उठी।

चन्द्रा को नीद नही आ रही थी। मां के शब्द कानों मे गूज उठते थे। सच, क्या रूप-गुण मे वह इतनी हेय थी कि स्वयं प्रेम की भीख मागने वाला पराये समाज की लड़की के लिए अपने धर्म को भी छोड दे ? सच ही, यह तो उसके नारीत्व का घोर अपमान है। जयचन्द्र, यह तुमने क्या किया ? कहा गया तुम्हारा वह पत्र, जिसमे तुमने लिखा था कि यदि मैं तुम्हारे पत्र का उत्तर नही दूगी तो तुम देश छोड जाओगे। क्या तुम्हारा प्रेम केवल ढोग था ? क्या तुम्हे इतने छल-प्रपंच आते थे ?

एक सीधी-भोली कली का मर्म मसलने मे तुम्हे रंचमात्र दया नहीं आई ! क्या तुमने यह भी नही सोचा कि तुम्हारी वाग्दत्ता नारी इस संसार मे कही मुह दिखाने योग्य नहीं रहेगी ! मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया था ?

इच्छा होती है तुम्हें इसका दड दू । मै ही क्यो प्रतिज्ञा मे बधी रहूं ?

भाभियो ने चन्द्रा को बताया था कि कई सम्बन्ध आ रहे है । जयचन्द्र के विश्वासघात का समाचार पाकर बंगदेश के अनेक कुमारों के परिवारों से प्रस्ताव आ रहे है । नवद्वीप के एक ब्राह्मण कुमार कामदेव-से सुन्दर है । एक तर्क-शास्त्री सावरे और इकहरे शरीर के युवक का भी जन्मपत्र आया है । इसके नेत्र हिरण जैसे दीर्घ एव सरल है । इसने गौड़-नरेश के पडितो को तर्क मे परास्त किया है । फुलिया गाव का एक ब्राह्मण युवक संस्कृत का सरस कवि है, उसे वाणी सिद्ध है । और भी अनेक-अनेक ।

क्यो न चन्द्रा किसी ऐसे सुन्दर और गुणी युवक को वरमाला दे दे, जिसे देख जयचन्द्र भी ईर्ष्या की अग्नि मे झुलसता रहे !

काफी रात बीत रही थी । चन्द्रा के प्राण छटपटा रहे थे । सिर मे पीडा थी । कभी-कभी हल्की झपकी-सी आ जाती, अन्यथा फिर वही प्राणातक यत्रणा ।

कौए बोलने लगे । चन्द्रा उठ खडी हुई । उसे चक्कर आ गया । वह थोडी देर चारपाई पकडे बैठी रही ।

बशीदास के सामने जन्मपत्रियो के ढेर लगे हैं । जाने कहा-कहा से घटक चले आ रहे है । एक से एक कुलीन और सुन्दर युवको की ओर से ब्राह्मण घटकाली कर रहे है ।

"चन्द्रा बेटी, तुम बिल्कुल चिन्ता न करो । बृहस्पति जैसे विद्वान, कार्तिक जैसे सुन्दर कितने ही ब्राह्मणकुमार मेरी बेटी के चरणो पर न्यो-छावर हो जाने को तैयार है ।"

"पिता···" चन्द्रा के शब्द गले मे ही अटक गए । बड़ी कठिनाई से

वह कह सकी :

"एक अनुरोध मान लीजिए। अब इस जन्म में विवाह की बात'

चन्द्रा उमडते हुए आसू न रोक पाकर वहा से शीघ्र ही हट गई।

जन्मपत्रियो का ढेर एक ओर सरकाकर वंशीदास ने दीर्घ सास लेकर मन ही मन कहा :

"जिसकी आशका थी, वही हुआ। हाय, मेरी कली-सी बिटिया पर अकाल वज्रपात हो गया।"

चन्द्रा का सिर अपने वक्ष से लगाकर वे दृढ स्वर मे बोले :

"मैं तुम्हारे लिए शिव-मन्दिर का निर्माण कराऊगा। तुम शिव की आराधना करो और रामायण लिखो। राम-सीता का पावन चरित्र तुम्हें शान्ति देगा।"

पाशुलि, बछड़ा और गाय के बेचने से जो धन प्राप्त हुआ था, उसका एक अंश अभी शेष था। जो थोडे गहने-कपड़े बनवाए गए थे, वे भी बेच दिए गए। गाव के मज़दूरो ने मजदूरी नही ली। दूर-दूर के गाव वालो ने भी सहायता की। एक-एक ईंट चढती गई।

शिवमन्दिर का निर्माण पूरा हुआ, किन्तु चन्द्रा की पार्वती-सी मां यह संसार छोड गईं।

बेनू कैवर्त्त शिकार खेलने गया। पालतू कौडा पक्षी को छोडकर जैसे ही वह शिकार के लिए झाडी के पास बैठा, एक बड़े काले नाग ने उसे डस लिया।

कौडा पक्षी से सन्देश पाकर मालो पागलिनी-सी दौड पड़ी :

"हाय, सांप ने तुम्हें क्यो डसा, मुझे क्यो न डस लिया! मैं सोआमी का मुह देखकर सारे कष्ट भूल जाती थी, विधाता से यह भी न देखा गया!"

पांचों भाई मृत बेनू को गोद मे लेकर रोए, "बहिन के हाथो की शंख-चूड़ी कैसे तोड़ी जाएंगी।"

मालो शव को गारुड़ी के पास ले गई। गारुड़ी ने माथे पर थप्पड़

मारा और उसने क्रमश. कमर, घुटने और पैर तक विष उतार दिया। पाताल के काले नाग ने विष चूस लिया। बेनू उठकर बैठ गया।

मालो का जय-जयकार हुआ···

"सती ने अपना पति जिला लिया, जैसे कि बेहुला ने लखिन्दर को जिला लिया था।"

"पान-फूल देकर नारी को घर मे ले लो। सती से नौकरानी का काम कराया जाता है। हाय-हाय!"

मामा-फूफा फिर आ गए। उन्होने फिर सिर हिलाया। वे मालो को लेने के लिए तैयार नही हुए।

मालो असती है।

यह अपमानजनक आक्षेप बार-बार सहन नही हुआ। आकाश मे भयंकर तूफान उठ खड़ा हुआ। घाट पर एक टूटी मन-पवन नाव पडी थी। आधी के ही समान मालो छूट पडी। उसने नाव मे बैठकर रस्सी खोल दी।

ननद दौडी आई, "बहू, टूटी नाव से उतरकर मेरे घर आ जाओ।"

बूढी सास बोली :

> "सुन-सुन मेरी प्रान बहू
> मैं कहती हू समझा कर,
> घर की लछमी बहू हमारी
> लौट के आजा फिर घर।"[१]

पति दौडा आया :

"प्यारी, तुम डूब रही हो तो मुझे भी साथ ले लो। एक बार मुंह उठाकर प्राणो की वेदना कह लो। मै तुम्हे घर मे रखूंगा। मुझे समाज से कुछ भी लेना-देना नही है।"

"नही सोआमी, मेरे रहते तुम्हारा कलंक दूर नही होगा। जात-बिरादरी के लोग तुम्हे सदा सताते रहेगे।"

नाव घाट से काफी दूर चली गई थी। अंधड का वेग और भी प्रबल

---

१. शुन गो पराण बधू कइया बुझाइ तरे।
   घरेर बउ जे आमार फिइरा आइस घरे॥

हो उठा। मालो की आवाज सुनाई पड़ी :

"सौत बहिन, सुख से गृहस्थी चलाना। सोआमी को कोई कष्ट न हो।"

आंधी के प्रबल आघात से नाव फिरकी-सी नाची, नदी के मध्य पहुच गई और अन्धड के अन्धकार में लुप्त हो गई।

डूब-डूब री जर्जर नैया
और है कितनी दूर,
मैं देखूं पाताल डूब के
है वह कितनी दूर।

गरज उठे पूरब में मेघा
छूटा विषम प्रभंजन,
कहाँ गई टूटी नौका मे
दुखिया नारी शोभन।[1]

कलम फेंककर चन्द्रा धरती पर लोट-पोट होकर रोई, बिलख-बिलखकर, सिसक-सिसककर।

'मलुआ' नाम का काव्य चन्द्रा ने पूरा कर लिया था, किन्तु जिस नारी को आधार मानकर यह काव्य लिखा गया, वह सीता-सी सर्वसहा पतिव्रता नारी मालो, चन्द्रा की मालो बौदी, अब कहा थी! टूटी नौका मे पानी भरा होगा। घूट-घूट पानी उसके फेंफडो को दबोचता उसकी सास-नली को घोटता गया होगा।

हाय नारी, ममता के किन सूत्रो मे बधकर तू इस कठोर धरती पर आ जाती है? क्या तेरे आसू कभी इस सूखी धरती को रचमात्र भी गीला कर पाएगे?

---

१. डुबुक डुबुक डुबुक नाओ आर बा कत दूर।
डुइबया देखि कत दूरे आछे पातालपुर॥

पूबेते गर्जिल देवा छुटलो बिषम बाओ।
कइबा गेला सुन्दर कन्या मन-पबनेर नाओ॥

१६

आशमानी का जूडा बना देने के बाद जयचन्द्र ने एक शीशी निकाली।

"इसमे क्या गुलाब जल है ? इसका क्या होगा ?"

"काचुली उतार दो तब बताऊ।"

"वाह, आज तुम्हे क्या हो गया है ?"

"उहुं।"

"अच्छा हटो, हाथ दूर करो। आज क्यो तुम्हारा प्यार उमड रहा है ? रोज तो मुह लटकाए बैठे रहते थे।"

जयचन्द्र ने गुलाब-जल की फुहारे मारी—आशमानी के नग्न वक्ष, पीठ और मुह पर। फिर एक रेशमी वस्त्र-खंड से पोछकर उसे धुली हुई चोली पहनने को दी। मयूरपंख साडी अपने हाथ से बाध दी। उसे बायी बाह मे भरकर उसके माथे पर कुकुम और चन्दन की पत्र-रचना की। सस्कृत-साहित्य मे वर्णित प्रसाधनो के अनुसार उसने भौंह, कपोल और स्तनो का शृंगार किया। मांग मे सिन्दूर भरने लगा तो आशमानी ने हाथ पकड लिया।

"क्यो ?"

"न। तुमने जो बेल-बूटे निकाले है, वे पोंछे जा सकते हैं, किन्तु हिन्दुओ के सिन्दूर को कहां छिपाऊगी। यह तो तीन-चार दिन तक न मिटेगा। बाबा, भाईजान और जात-बिरादरी के लोगों के सामने मैं कैसे निकलूगी ?"

जयचन्द्र का सपना पूरा न हो सका, उसने सिन्दूर की डिबिया ठंडी सास के साथ धरती पर रख दी। आशमानी ने कंटीली आंखो से तिरछा-तिरछा देखते हुए मुस्करा दिया। जयचन्द्र विभोर हो गया, चन्द्रा की चितवन मे यह मदिरा कहा ! वह बोला, "काजल तुम अपने हाथ से लगा लो।"

आशमानी ने आंखे राज कर कानो की ओर नोकें निकाल दी। उसने

फिर एक बार जयचन्द्र की ओर देखा। जयचन्द्र आर्त्तस्वर करता हुआ धरती पर बैठ गया।

"क्यो, क्या हुआ ?"

"हाय गोविन्ददास, हाय गोविन्द दा···"

"क्यो, गोविन्ददास को अकस्मात् क्या हो गया ?"

"हाय, तुझे देखकर ही गोविन्ददास चीत्कारकर लिख बैठे होगे :

"सुन्दरि तोहारि चरित बिपरीते ।
काजर गरलहि भरल नयन शर ।
हानलि अन्तर चीते ॥
तव अगेयाने कयलि तुहुँ ऐछन
अब सुपुरुख बध जान ।
उच कुच चुम्बन सरस परश देइ
उदघाटह दिठि-बाण ॥"

(सुन्दरी, तेरा चरित उल्टा है। तूने अपने नैनो के बाणो मे काजल का विष भर लिया और मेरे हृदय पर प्रहार किया। तूने अनजान मे ही ऐसा किया है, (किन्तु समझ ले मुझ) सुपुरुष का अब वध होने वाला है। (अब तो एक ही उपाय है) तू ऊचे-ऊचे स्तन-रूपी चुम्बक के सरस स्पर्श से चितवन का बाण निकाल दे।)

"अरे धत्, तुम बहुत दुष्ट हो।"

आशमानी एक तश्तरी मे पान रख लाई। उसने अपने हाथ से एक पान जयचन्द्र की ओर बढाया। जयचन्द्र ने हाथ पकडकर कहा, "इसमें अमृत बसा दो।" आशमानी ने मुस्कराकर पान का एक कोना अपने ओठों मे दबाकर आखें बन्द कर ली। जयचन्द्र ने झुककर उसके ओठों पर मुख रखकर पान ले लिया। इसी पद्धति से आशमानी ने भी पान खाया। उसके पतले-रसीले ओठ एकदम कुदरू-से चटक लाल हो गए। जयचन्द्र ललचाकर झुका, फिर रुक गया।

"मेरी बेगम।"

"मेरे हुजूर।"

"एक बात कहूं ?"

"आज्ञा।"

"तुम प्याज और लहसुन खाना कम कर दो।"

आशमानी सर्र से मुह घुमाकर खडी हो गई। जयचन्द्र गिड़गिड़ाकर बोला, "रानी, बुरा न मानना। मुझे माफ कर दो।"

"हटो, जाओ। बड़े आए। मेरे मुह से प्याज-लहसुन की गन्ध आती है तो क्या करूं! क्यो इश्क लडाया? बंभना हो न!"

"अब नही कहूंगा। तुम्हारे गन्ध कहा आती है। तुम तो पद्मिनी नारी हो, पद्मगन्धा।"

"यह क्या बला होती है?"

"जिसके शरीर से पद्मफूल अर्थात् शापला फूल की सुगन्ध आती हो।"

"तुम बडे चापलूस हो।"

"आशू, मैं कौन हूं तुम्हारा?"

"तुम नही जानते?"

"तुम्हारे मुंह से सुनना चाहता हू।"

तुम हो मियां लफग अली।"

"..."

"अरे तुम तो ऐसे मुह फुलाए बैठे हो जैसे कि कभी-कभी अपना बडा वाला मुर्गा फुला लेता है।"

जयचन्द्र सोचने लगा, क्या चन्द्रा उसके प्रति ऐसी भाषा का प्रयोग करती?

जयचन्द्र ने परिस्थिति से समझौता करना चाहा। वह अपने को आशमानी मे खो देना चाहता, ताकि अपनी निराशा, अपनी व्यथा भूल जाए। किन्तु उसे लगा कि वह आशमानी को अपनी प्रीति की डोर मे बाध नही पाता। वह चचल किरण अथवा बालू के कणों-सी मुट्ठी मे से सरक पड़ती है।

आशमानी नित नये रूपो मे आती, नित नये-नये कौशलो द्वारा वह जयचन्द्र को प्रलुब्ध करती। वह स्वयं प्रेमोन्मत्त हो उठी थी।

इस दुबली-पतली लडकी मे इतना कामावेग है, वह कल्पना नही कर पाता। चन्द्रा मे यह उन्मत्तता, यह काम-विहार कहा मिलता! कभी-

कभी आशमानी की घोर कामुकता उसे विरक्तकर लगती।

आशमानी उसे बार-बार विवश करती, किन्तु वह पाच बार नमाज़ नहीं पढ़ पाता। कभी कलमा को लेकर दोनो झगड़ पडते।

"कलमा का अर्थ क्या है ?"

"या इलाह इलल्लाह का अर्थ है—एक परमेश्वर ही सत्य है।"

"यह तो अच्छी बात है। और आगे ?"

"मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह—मुहम्मद परमेश्वर के दूत है।"

"मुहम्मद ही क्यों दूत है और कोई क्यो नही ?"

"मुहम्मद ही है। उन्हे ही दूत बनाकर भेजा गया। उन्होने ही इस्लाम चलाया।"

"इस्लाम चलाया, ठीक किया, किन्तु मै उन्हें ही क्यो दूत मानू ?"

"जब इस्लाम माना है तो दूत मानना ही पड़ेगा।"

"हा, तुम्हारा यह तर्क ठीक है। मान लेता हू, किन्तु मैं कलमा अपनी मातृभाषा मे इस प्रकार पढूगा—परमेश्वर के अतिरिक्त और कोई सत्य नही, मुहम्मद परमेश्वर के दूत है।"

"मातृभाषा नही चलेगी ?"

"क्यो नहीं चलेगी ?"

"प्रत्येक रस्म-रिवाज की अपनी पवित्रता होती है। हिन्दू भी तो अलग-अलग भाषाए बोलते है किन्तु अपने संस्कार सस्कृत मे करते है।"

आशमानी सुन्दर थी, उत्तेजक थी, रति-कर्म मे अत्यन्त निपुण थी, किन्तु उसकी बुद्धि तर्क-उपयुक्त नही थी। अब वह प्रत्येक बात पर बहस करती थी। ऐसा भी लगता था कि वह जयचन्द्र की प्रत्येक शका का उत्तर पहले से ही सोचकर रखती थी। क्या यह उसीकी बोली थी ? कही उसके ओठों से किसी दूसरे की बुद्धि तो नही बोल रही थी ?

पास के ही एक गाव मे पूरी आबादी मुसलमानो की थी। ये लोग नमाज़ पढ़ते थे, मस्जिद जाते थे, किन्तु एकतारा बजाते हुए राम-रहीम की एकता के गीत गाते थे। इनकी स्त्रियों और हिन्दू स्त्रियो मे भेद नही दिखाई देता था। आश्चर्य की स्थिति मे इनके मुख से निकल जाता,

"हाय राम !"

इस गांव को काजी की ओर से बार-बार हिदायतें मिल रही थी। कट्टर मुसलमान इनके गान-वादन को पसन्द नही करते थे।

एक रात इनके झोपडो से आग की ऊंची-ऊची लपटें उठती दिखाई दी। स्त्री-बच्चो की पुकार। सभी जलते हुए झोपडो से बाहर निकल आए।

पुरुषो पर सगठित आक्रमण हुआ। युवको को पकड-पकडकर पेड से बाध दिया गया। उनके अंग-भंग किए गए। महिलाओ को पकडकर उनके साथ कई-कई लोगो ने बलात्कार किया। कई महिलाएं बेहोश हो गईं। कई क्वारी लडकिया लापता थी।

बहुतेरी लडकियां कट्टर परिवारो मे डाल दी गई थी। इन बज्जात बंगालियो के पेट से सच्चे इस्लाम की पौध उगाई जाएगी।

बाउल मिया उसी अभागे गाव की ओर दौड़े गए थे। जयचन्द्र भी कही गया था। आब्दुल्ला आशमानी के पास आ खडा हुआ।

"आशू ! मामा को रोको। वे उस गाव क्यों गए ?"

"उस गाव पर अत्याचार हुआ, वे देखने भी न जाएं ?"

"उस गांव को यही सजा मिलनी चाहिए थी। यह साला बंगाली काफराना आदतें सीख रहा है।"

"भाईजान, बगाली तो तुम भी हो।"

"मेरा बाप असल खून का मुसलमान है। मैं तुम्हें भी आगाह करता हूं। अपने आदमी को सभालो। मै इस्लाम की हिफाज़त के लिए नही, तुम्हारे फायदे के लिए कह रहा हू। वह काफिर कभी तुम्हारा नही हो सकता। कभी तुमसे ऊबा तो तुम्हे भी छोडकर भाग खडा होगा। जो अपनी जात-बिरादरी की औरत का न हो सका, वह तुम्हारा कैसे हो सकता है ! उसे पक्का मुसलमान बनाने की कोशिश करो, तो ही तुम्हारा रह सकता है।"

"उस गांव की लड़कियां कहां गईं ?"

"कही गई हों, अब वे सच्चे मुसलमान पैदा करेंगी।"

"क्या तुम्हारा हाथ भी इसमे है ?"

"मेरा क्यो होने लगा !" आब्दुल्ला की कुटिल हंसी विष-बुझी थी।

"एक बात और जान लो, आशू। चन्द्रा ने दूसरे किसीसे ब्याह करने से मना कर दिया है। देखना है, तुम्हारे आदमी पर इसका क्या असर पडता है।"

"क्यो जी, तुम चुप क्यो बैठे हो ?"

"तो क्या करू !"

"कुछ करो, चुप मत बैठो।"

"क्या करू ?"

"कुरान पढा करो।"

"कुरान-पुरान मेरे वश के नही है।"

"तो कविताएं ही लिखा करो।"

"कविता तो मुझे मिल ही गई, अब क्या करना है।"

"तुम कुछ सोचते रहते हो, क्या सोचते रहते हो ?"

"कुछ भी तो नही।"

"नही, तुम छिपाते हो। तुम्हें मुझसे विवाह कर पछतावा हो रहा है।"

"यह तुमसे किसने कहा ?"

"लगता है।"

"गलत लगता है।"

"तुम उस हिजल पेड़ के नीचे रोज़-रोज़ क्यों बैठते हो ?"

"जिससे फिर कोई आशमानी मिल जाए।"

"आशमानी या चन्द्रा ?"

"चन्द्र बौने हाथों में नहीं आता।"

"बौने हाथों में आशमानी ही आ सकती है ?"

"बक-बक मत करो, मुझे शान्ति से बैठने दो।"

"अब तुम्हे मेरी बातें भी नही सुहातीं ?"

"तुम्हें जो अच्छा लगे, समझ लो।"

१७

चन्द्रावती दिन मे केवल एक बार भोजन करती थी। उसपर भी अनेक व्रत-उपवास हो जाते। वह और भी दुर्बल हो गई थी। दुर्बलता के कारण आखे और भी बडी-बडी प्रतीत होती थी।

वह चटाई पर बैठी थी। सामने महिलाओ की भीड लगी थी। चन्द्रा गा-गाकर रामायण सुनाती, सामने की भीड भी गाती जाती। महिलाओ को रामायण के कई प्रसंग कठस्थ हो गए थे। वे विवाह आदि के मंगल-अनुष्ठानो मे इन प्रसगो का गायन करती थी। चन्द्रावती इन्ही महिलाओं को लक्ष्य मे रखकर सीधी-सरल भाषा मे रामायण की रचना कर रही थी। ग्रामीण भोली वधुओ को यह अपनी भाषा की, अपने मर्म की कथा लगती थी। रामायण का बडा भाग बारहमासी अथवा सीता और सखियो के वार्त्तालाप के द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

सीता कह रही थी—

पत्थर से ठोकर लग जाने पर मेरे पैर से रक्त की धार छूटने लगी। प्रभु दुःखित होकर हवा करने लगे। देवर लक्ष्मण कमल के पत्ते मे जल ले आए। पता नही मै कब तक प्रभु की गोद में अचेतन पड़ी रही।

मैं देवर के गुणो का बखान नही कर पाऊगी। वे वनफूल तोडकर मेरे हाथ में दे देते थे।

वन के रसीले फल और पत्तो की कुटिया पाकर मैं तो अयोध्या का राजपाट भी भूल गई थी। मै राज्य-सुख और सिहासन लेकर क्या करूंगी। शत राजपाट तो मेरे प्रभु के चरणो मे है।

मैं प्रात'काल उठकर वनफूल की माला गूथती थी और प्रभु के गले में प्रसन्न होकर पहनाया करती थी।

प्रभु की सुन्दर दीर्घ भुजा का तकिया बनाकर मैं प्रत्येक रात सोती थी।

मृग, मयूर और वन के पशु-पक्षी मुझ सीता के संगी थे। वे मेरे

सुख से सुखी और दु:ख से दु:खी हुआ करते थे।…

चन्द्रा ने रुककर देखा जानकीवल्लभ अंगूठा चूस रहा है। बुआ को अपनी ओर देखता देख उसने अंगूठा निकालकर कहा, "पिसीमा, मैं अंगूठा नही चूस रहा था।"

चन्द्रा के अधरो पर क्षीण-सी मुस्कान आ गई। इन सूखे पतझरी ओठो पर मुस्कान तो जैसे सदा के लिए विलीन हो गई थी, बस अभी एक क्षण को नन्ही-सी कोंपल दिखाई दे गई।

डेढ वर्ष पहले जानकीवल्लभ का जन्म हुआ था। बडी बौदी प्रसव की वेदना से कराह रही थी। चन्द्रा को उनके पास नही जाने दिया गया था। वह अपने पिता के पास बैठी थी। उलू-लू-लू-लू…उलुध्वनि हुई, एक बार, दो बार, तीन बार। चन्द्रा का हृदय धडक उठा। देखे आगे संख्या बढती है या नही। लडकी होने पर तीन बार और लडका होने पर पाच बार उलुध्वनि की जाती है। जैसे ही चौथी बार उलुध्वनि हुई पाचवी की प्रतीक्षा किए बिना चन्द्रा बोल उठी थी, "बाबा, मैं इस लडके का नाम जानकीवल्लभ रखूगी।"

जानकीवल्लभ अवसर की खोज मे ताक-झांक कर रहा था, कि कब फिर से अंगूठे का अमृत चूसने लग जाए। कथा आगे चली। सीता बोली—

…ऐसा सुन्दर मृग तो कभी नही देखा। गोसाईं, इस सोने के हिरण को पकड दो। मैं इसे सूखी लताओ से अपने द्वार पर तब तक बांधे रहूंगी, जब तक यह पालतू नही बन जाता। हम लोग इसे लेकर अयोध्या जाएंगे। प्रभु, इसे पकडकर वन की निशानी के रूप मे ले चलो।…

(चन्द्रा को यह अच्छा नही लगा कि हिरण की खाल मागी जाए। उसने सीता के मुख से हिरण को पालतू बनाने की बात कही।)

रावण द्वारा अपहरण के करुण प्रसंग का गान करते समय चन्द्रा का गला भर आया। उपस्थित नारी-समुदाय भी रो उठा।

…सीता की आखों में जितना जल है, मेघों में भी नही होगा…

मेघे तत नाइको पानि सीतार चक्षे जत जल।

"दीदी मोनी, हाय रे।"

गाय-सी रभाती एक स्त्री दौड़ी आई। फटी और गाठ लगी साडी मे उसके पूरे अग नही छिप रहे थे।

"क्या हुआ काकी ?"

"मेरे बचुए को बहुत असुख है। चरनों की धूल दे दो दीदी मोनी।'

"इससे क्या होगा ?"

"मगल होगा, मेरे बचुए का। बाभन कन्या देवी हो तुम, साक्खात देवी। तुम्हारी चरन-धूल से मेरे बेटे का असुख दूर हो जाएगा।"

चन्द्रावती ने पोथी बाधकर रख दी।

"चलो, मै चलती हूं, तुम्हारे साथ।"

"हाय, तुम हम शूद्दर के घर जाओगी ? न-न-न, यह पाप मैं अपने सिर न लू।"

टूटी चारपाई पर पाच साल का शिशु ज्वर में संज्ञा-हीन पड़ा था। चन्द्रा के लिए काठ का पीढा डाल दिया गया। चन्द्रा ने उसके माथे पर हाथ रखा, तवा-सा जल रहा था। बच्चे ने कुछ बेचैनी महसूस की, उसे उल्टी हो गई।

चन्द्रा उसका माथा दबाती रही। परिवार के लोग आसू बहाते खडे थे। चन्द्रा ने पूछा :

"काकी, आज तुमने क्या खाया ?"

"कुछ खा लिया था, दीदी मोनी।"

"दीदी मोनी नही, बेटी कहो। तुम झूठ बोलती हो। तुमने कुछ नही खाया। तुम्हे मेरी सौगन्ध, सच बताओ, घर मे चावल है ?"

स्त्री ने सिर हिलाकर 'न' का सकेत किया। चन्द्रा के अचल में दो-चार कौड़ियां बंधी थी, उन्हे खोलकर उसने स्त्री को दे दी।

"तुम मेरा माथा खाओ काकी, भूखी न रहना, नही तो तुम्हे भी असुख हो गया तो बच्चे की सेवा कौन करेगा।"

बच्चे का ज्वर कुछ ही हल्का हुआ था, वह अब सो रहा था।

"काकी, आज ही साझ के समय कविराज से औषध ले आना।"

घर आकर चन्द्रा ने स्नान किया। बिना एक भी दाना ग्रहण किए उसका पूरा दिन बीत गया।

१८

"लो, जरा लालू को संभालो। करने को बहुत काम पडा है।"

"तुमने मेरी बात पर ध्यान नही दिया, प्यारी आशू।"

"किस बात पर?"

"कि बच्चे का नाम लाल मोहम्मद न रखकर चन्द्र मोहम्मद रखा जाए।"

"यह नाम क्यो रखा जाए?"

"क्योकि मेरे नाम मे चन्द्र शब्द है।"

"तुम्हारा नाम अब जयचन्द्र नही जयनाल मियां है। दूसरी बात कि चन्द्र नाम हिन्दुओ का है। हमारी बिरादरी के लोग इसे नही सह सकेंगे।"

"तो चाद मोहम्मद कर दो। चाद शब्द पर तो आपत्ति नही होगी?"

"मैं सब समझती हूं। तुम्हारी चालाकी नही चलेगी।"

"मैं भी खूब समझता हू कि तुम क्यो विरोध कर रही हो।"

"यह समझते हो तो तुम अपनी चोरी का सबूत अपने-आप ही दे रहे हो।"

"आशू, होश मे हो?" जयचन्द्र दहाडा।

"अपने से पूछो, तुम होश मे हो? स्त्री समझकर मुझे भरमाना चाहते हो? मैं पूछती हू कि तुम चन्द्र या चाद शब्दो पर ही जोर क्यो दे रहे हो? तुम्हारे नाम मे जय शब्द भी तो है। बच्चे का नाम जय मोहम्मद रखोगे?"

जयचन्द्र को लगा वह अकेला पड़ गया है। बाहर से भी और

भीतर से भी । वह जिस समाज मे पला, बडा हुआ, उससे वह बिल्कुल कटकर अलग हो गया । अब जिस समाज मे वह रह रहा था, उसकी रीति-नीति नही अपना पाता । इस भयकर एकान्त को वह भर नही पाता । पहले तो आशमानी की प्रेम-मदिरा में वह अपने को कुछ-कुछ भूल चला था । अब नशा उतरने लगा था । प्रेम बासी हो गया था । शायद चन्द्रा अपने सयम से वासना को सयत कर प्रेम की अखडता बनाए रखती, अथवा कौन जाने उसके प्रेम का भी यही परिणाम निकलता ।

जयचन्द्र प्रेम मे ऊष्मा लाना चाहता, उत्तेजना लाना चाहता, किंतु एक-एक कर उसके सारे प्रयास उत्तेजना की आच को थोडी देर सुलगाकर ठडा कर देते ।

"आशू प्यारी, तुमने मुझसे पहले किसीको प्यार किया ?"

"किसीको नही किया ।"

"तुम झूठ बोलती हो ।"

"किसी और को किया होता तो तुमसे ही ब्याह क्यों करती ?"

"मुझसे अधिक प्रेम किया, किन्तु कोई ऐसा भी तो हो सकता है, जिससे थोडा-सा किया हो । मुझे यदि रुपया-भर किया हो तो किसीको कानी कौड़ी-भर ।"

"तुमसे किसीको किया है ?"

"चन्द्रा को ।"

"वह तो दुनिया जानती है, और किसे किया ?"

"मालो को ।"

"उसे क्यों किया ?"

"उसके सावरे-सलौने मुह मे पता नही क्या आकर्षण था कि उसे देखते रहने की इच्छा हुआ करती थी ।"

"फिर तुम्हारा प्रेम कहां तक आगे बढा ?"

"कही तक नही । बस मैं सोचकर ही रह गया । अब तुम बताओ ।"

"वाह, मैं क्या बताऊं । मैंने कुछ किया ही नहीं ।"

"ऐसा तो हो ही नही सकता । तुम्हारी ऐसी वयस हो चुकी थी कि किसी भी पुरुष की ओर थोड़ा-थोड़ा आकर्षण होने लगता । मुझसे

परिचय के पहले कोई तो पुरुष ऐसा होना चाहिए। बोलो, कौन था वह ?"

"किसे बताऊं ? थोडे-से आब्दुल्ला भाई साहब हो सकते है।"

"उनकी ओर क्यो आकर्षण हुआ ?"

"पता नही। उनकी निर्दयता और बेरहमी कभी-कभी अच्छी लगती थी।"

"अच्छी लगती थी या अब भी अच्छी लगती है ?"

"वाह, अब ब्याह के बाद भी क्या ?"

"क्यो, क्या ब्याह के बाद आकर्षण नही हो सकता ?"

"तुम्हारा किसीके लिए हुआ ?"

"हा हुआ, तुम्हारी बौदी की ओर···" जयचन्द्र झूठ बोल गया।

'क्यो आब्दुल्ला भाई साहब की बीबी तो मुटल्लो है।"

"इसीलिए शायद हो गया हो कि उनमे नूतन स्वाद हो। अच्छा, विवाह के पश्चात् तुम्हारा किसके लिए हुआ ?"

"किसीके लिए नही।" आशमानी झुझला उठी।

"देखो, यह तो हम मनोरजन के लिए कह रहे हैं।"

"मुझे नही चाहिए ऐसा मनोरंजन।"

"झूठ-मूठ कल्पना करने मे बिगडता क्या है ? ऐसे सोच लो, तुम्हारी जान-पहचान के सारे पुरुष इकट्ठे किए जाएं और तुम्हे मजबूर किया जाए कि इनमे किसी एक के साथ तुम्हे रात बितानी है, तो तुम किसे चुनोगी ?"

"फकिर चाद को।"

"दुत्, बदमाशी मत करो। मैं बच्चे की बात नही करता, कोई जवान आदमी बताओ।"

"कोई नही।"

"अरे भाई, ऐसे सोच लो कि तुम्हे ऐसा मजबूर किया जाए कि या तलवार से सिर कटवा लो या किसीके साथ रात बिताओ। तो मौत से बचने के लिए ही यदि किसीको चुनना ही पडे तो ?"

"तो आब्दुल्ला भाई साहब को चुन लूगी। बस, अब यह रद्दी बक-

वास बन्द करो । मै कोई उत्तर नही दूगी ।"

आशमानी एक नारी है । उसके मन मे इतने घोर-पेच नही । उसे इस वार्त्ता का कुछ भी याद नही रहा । किन्तु जयचन्द्र के मन मे काटा चुभ गया । आशमानी के मन मे कही आब्दुल्ला है अवश्य ।

बच्चा होने के बाद आशमानी कुछ मोटी हो गई थी । उसमे पहले जैसा आकर्षण नही था ।

जयचन्द्र ने उसका मुह चूम लिया, उसने अचल से गाल पोछ लिया ।

जयचन्द्र को अपमान की अनुभूति हुई । अब जब तक यह चुम्बन के लिए बिलबिला न जाए, नही लूगा ।

रात को आशमानी के खर्राटे सुनाई पडते । जयचन्द्र चिढने लगा ।

"तुम्हे गाय का मास खाना होगा ।"

"क्यो खाना होगा ?"

"जिससे तुम्हारा काफिरपना कम हो जाए ।"

"मैं गाय का मास नही खाऊंगा ।"

"तुम्हे खाना पडेगा, क्या तुम मुसलमान नही हो ?"

"कही ऐसा नही लिखा है कि मुसलमान को गाय का मास खाना ही चाहिए । तुम आजकल जो कुछ बोला करती हो तुम्हारे शब्द नही है ?"

"किसके शब्द है ?"

"कम से कम ये शब्द बाबा के भी नही है ।"

"तो किसके है ? क्या तुम्हे मुझपर सन्देह है ?"

"मुझे कुछ भी नही है, बस मुझे छेड़ा न करो ।"

जयचन्द्र ने सोते हुए शिशु को ध्यान से देखा । उसके घने काले केश और माथा जयचन्द्र के समान थे । बन्द पलकें और ओठ आशमानी जैसे थे । नाक कैसी थी ? नाक और कान आब्दुल्ला जैसे थे । हो सकता है केश और माथा देखकर भी उसे भ्रम हो रहा हो, वे भी उसके समान न

हो। यदि यह शिशु आब्दुल्ला का हो तो कैसी बिडम्बना होगी कि लालन-पालन वह करेगा। गन्दा कीडा! उसकी इच्छा हुई पटक दे इसे खाट पर और कभी न छुए।

शिशु सोते-सोते मुस्कराया, एक निष्पाप हसी, ऐसी हंसी जिसे उसने चन्द्रा के ओठो पर देखा है। उसकी आखे भर आई। उसने शिशु को वक्ष से लगा लिया। यह किसीकी भी सन्तान हो, इसका क्या अपराध?

१९

जयचन्द्र को लगा, वह आशमानी के साथ ठीक व्यवहार नही कर रहा है। आशमानी उसको प्यार करती थी। विवाह के कुछ दिन अच्छे बीते थे। अन्तत. नारी है, दो मीठे बोलो से ही वह सन्तुष्ट हो जाएगी। उसने योजना बनाई, वह आशमानी का पैर अपनी गोद मे ले लेगा और कहेगा, "देहि मे पदपल्लवमुदारम्।"

न-न, यह तो बाद मे करेगा, पहले वह उन लोकगीतों का गायन करेगा, जिन्हे आशू विवाह के पहले गाया करती थी। मुसलमान महिलाओं में अनेक गान और गाथा-गान प्रचलित थे, जो हिन्दू-घरो से ही लिए गए थे। सभवत. ये लोग पहले हिन्दू थे। मुसलमान हो जाने के पश्चात् भी इन्होने अपने गीत भुलाए नही थे। आशमानी के मुह से उसने जो प्रणयगीत सुने थे, उनमे बहुतेरे ऐसे थे, जो अन्य समाजो मे उपलब्ध नहीं थे।

घर के निकट आ जाने पर उसे लगा, आशमानी किसीसे फिस-फिस हसती हुई बात कर रही है। उसके पैर ठिठक गए। वह लौटकर पेड़ो के झुरमुट मे छिप गया। कुछ देर बाद आब्दुल्ला घर से बाहर निकला।

जब जयचन्द्र घर पहुंचा, आशमानी चावल बीनती मिली। जयचन्द्र ने पूछा, "बाबा कहा है?"

"क्या पता ?" संक्षिप्त-सा उत्तर मिला।

"आब्दुल्ला भाई साहब तो नही आए इधर, वहुत दिनो से नही मिले।"

"यहा आब्दुल्ला भाई साहब क्यों आने लगे ?" फिर वही रूखा उत्तर।

आशमानी ने आब्दुल्ला का यहा आना छिपाया क्यो ? क्या वह मुझसे विद्रोह किए है ?

आब्दुल्ला अपने मामा से बहुत चिढ गया था।

बाउल मिया गा रहे थे

"मन का मानुष मिला न मुझको
सोच मे डूबा रे मन,
मन का दुखडा मन मे रह गया
सोच मे डूबा रे मन।

मस्जिद दरगा सभी मे घूमा
मुल्ला मुशी सभी को पूछा
कहा मिले जीवन धन।"[1]

आब्दुल्ला बिगडकर कह रहा था, "आपके कलाम मे सूफीपना और काफिरपना है। आप ये हिन्दुआनी गीत गाते है। लडकी नखरे दिखाकर बोला करती है, हाय राम ! ऐसा हो गया, वैसा हो गया।"

"देखो बेटा, यह बाग्ला देश की धरती है, यह अरब देश नही है। यहा केवल खजूर नही है, सुंपाडी और केला के पेड भी हैं। कटहल और

---

१ मनेर मानुष पाइलाम ना, मने मने भाबछि गो ताइ।
मनेर दुख्खु मने रइलो, मने मने भाबछि ताइ॥
दरगा मसजिद सब घुइराछि
मोल्ला मुनसी सब जिगाइछि
आमि कोन्खाने तारे बा पाइ॥

हिजल हैं। रस की पेटिया सिरो पर ताने हुए नारिकेल है। यहा बौरों से महकते आम है, जिनपर कोयलें कुहकती है। यहा की धरती रसालु है, यहा का चावल रसालु है, यहा के गीत रसालु है, यहा के विचार रसालु हैं। यहा खून और पानी के प्यासे न रेगिस्तान है और न जीवन-सिद्धान्त। जिस तरह यहा के फलो का रस मीठा होता है, उसी तरह यहा के धर्म-सम्प्रदायो मे मिठास रहेगी। यहा कुरान चलेगा तो पुरान भी। यहा आल्ला जी रहेगे तो राम जी भी।"

"आप आल्ला जी क्यो कहते है, अल्लाह क्यो नही कहते ?"

"हम बगाली जिस तरह बोल पाएंगे, बोलेगे। यहां की धरती का चावल खाकर अरबो का उच्चारण क्यो लाएं ? चाहे आल्ला जी कहें या अल्लाह, वह तो बदल न जाएगा। एक बात और बताओ, तुम आब्दुल्ला क्यो हो ? तुम्हारे बाप ने मेरी बेटी का नाम आशमानी क्यो रखा, क्या ये नाम शुद्ध है ? तुम हमारे गीतो पर आक्षेप करते हो। जो गीत हमारे प्राण-रस बन गए है, उन्हे हम कैसे न गाएं ?"

"मामा, तुम सठिया गए हो। पास के गाव के लोगो का क्या हुआ, आपको मालूम है ? आपका घर मेरी वजह से बचा हुआ है।"

"किसी घर पर हमला होता भी तुम्हारी वजह से ही है। मुसलमानो के घरों मे आग लगाते तुम्हे शर्म नही आती ? तुम ही सबसे आगे-आगे खजर हाथ मे लिए मुसलमान औरतो को बेइज़्जत करते घूम रहे थे। मुझे सब मालूम हो चुका है।"

आब्दुल्ला पैर पटकता वहा से हट आया और आशमानी से बातें करने लगा। उसे सुनाई पडा, बाउल मिया गा रहे थे :

"पीर निरजन को सलाम, रसूल मुहम्मद को बन्दन।
यमुना-तट का बन्दो रास वृन्दावन,
कृष्ण बलराम बन्दो श्री नन्द नन्दन,
दशरथ के बेटे को वन्दो श्री राम लक्ष्मण।

लक्ष्मी सरस्वती बन्दो गंगा भागीरथी,

सीता ठाकुरानी बन्दो और सब सती ।"[1]

उसे लगा कि उसे चिढाने के लिए ही वे गा रहे है ।

दुर्गा माता की प्रतिमा । त्रिसूल राक्षस की छाती मे चुभा हुआ । दहाडता हुआ सिंह राक्षस की जघा फाड रहा । माता की अन्य भुजाओ मे अनेक आयुध ।

दन-दनादन-दन ।

ढोल पीटा जा रहा था । सभी उन्मत्त थे । हिन्दू-मुसलमान सभी एकत्र थे । दूर-दूर से ही जयचन्द ने देखा बाउल मिया भीड़ के बीच में है ।

दुर्गापूजा के समय वह प्रतिमा का शृंगार किया करता था । अब वह मा के स्पर्श का भी अधिकारी नही था । ढोल की दन-दनादन-दन किसी समय उसकी नसो मे लहू उत्तेजित करती थी, आज हूक भर रही थी ।

ढोल पीटने वाला राजा भी किसी समय हिन्दू था । यह यात्रा-दल मे कृष्ण का अभिनय किया करता था । स्त्रिया इसके अभिनय पर मुग्ध थी । कोई इसे बुलाकर सन्देश और नारियल के लड्डू खिलाती, कोई गमछा मे बधी दही देती, कोई-कोई पैसे-कपडे भी देती ।

एक वेश्या इसपर बुरी तरह रीझ गई । यह भी उसके आकर्षण मे फंसकर मुसलमान हो गया ।

मुसलमानो मे वह राजा से रज्जाक हो गया, किन्तु हिन्दू उसे अभी

---

१ सेलाम कबिर आगे पीर निराजन ।
महाम्मद मस्तफा बन्दो आर पचातन ।।
यमुनार तटे बन्दो रास बृन्दाबन,
कृष्ण बलराम बन्दो श्री नन्देर नन्दन ।
दशरथेर पुत्र बन्दो श्री राम लक्ष्मण ।।
लक्ष्मी सरस्वती बन्दो गगा भागीरथी ।।
सीता ठाकुरानी बन्दो आर जत सती ।।
(फैजुल्ला कवि की सत्य पीर-वन्दना का कुछ अश)

भी राजा ही कहते थे। हिन्दू उसके हाथ का पानी नही पीते थे।

राजा ने अपने को पूरी तरह मुसलमान परिवेश मे ढाल लिया था। लगता था, उसे न कुछ खोने का दु:ख है और न कुछ पाने का सुख है। वह जो है, वही ठीक है। वह वर्तमान को स्वीकार कर चुका है और उसे भोगता हुआ भी निर्लिप्त-सा जी रहा है।

दन-दनादन-दन।

ढोल पर काठी एकरस पड रही थी।

क्या ही अच्छा होता कि जयचन्द्र भी राजा की तरह वर्तमान को स्वीकार कर लेता। उसे अतीत कुरेदता रहता, भीतर ही भीतर काटता रहता।

रात घिरती आ रही थी। उत्सव तो सारी रात चलता रहेगा। लोग माता का प्रसाद लेगे, गाएगे, नाचेगे। वे सच मे उत्सव मनाएंगे। वह यहा सबसे कटा-कटा कब तक खडा रहेगा।

वह भारी पगो से बुझा-बुझा लौट चला।

आगन मे चारपाइया बिछी थी। घर भीतर से बन्द था। उसके हृदय मे शंका धड़क उठी। वह दबे पाव द्वार की ओर बढा। भीतर से गुर्राता पशुस्वर सुनाई पडा, साथ ही सीत्कार। वह वैसा ही सीत्कार था, जैसा कि कामोत्तेजना के अवसर पर रति-कुशला आशमानी के मुह से निकलता था।

जयचन्द्र के मन मे हुआ, एकदम शेर-सा उछलकर भीतर पहुच जाए, किन्तु फिर संस्कारी मन इस प्रकार चोरी-चोरी भीतर जाने के लिए सम्मत नही हुआ। मानो अपराध भीतर नही हो रहा, अपितु भीतर जाकर वह कर बैठेगा। यदि भीतर उसे कुछ नही मिला, तो क्या आशमानी उसे डाटेगी नही कि इस प्रकार छिप-छिपकर क्यो आते हो। उसका कौन-सा मुह रह जाएगा।

यदि भीतर कुछ हो ही रहा है, तो इन लोगो ने सोचा होगा कि यह तो दुर्गा-पूजा मे आधी रात तक रहेगा, अच्छा अवसर है।

लौट पड़ा वह। अभी भी ढोल-ढाक बज रहे थे। वह निरुद्देश्य कोसों

घूमता रहा। पैर थक गए। सिर दुखने लगा। अन्त में एक पेड के तने से टिककर वह बैठा रहा, बैठा रहा सूर्योदय तक।

आशमानी अपने ढंग से काम करती मिली। जयचन्द्र ने तीखी दृष्टि से उसे खोजना चाहा, कुछ भी अस्वाभाविक नही मिला। कुछ अस्वाभाविक था तो यही कि आशमानी ने कुछ नही पूछा कि रात को कहा रहे।

अंधा पोखर के पास झुरमुट मे हड्डियो का ढेर लगा था। असंख्य खोपडिया और दन्त-पक्तिया यहां-वहा पडी थी। खून से सनी फटी-नुची साड़ियां, चोलिया और टूटी चूडिया भी बिखरी थी। हड्डियो के साथ रस्सियां और केशों के गुच्छे चिपके थे।

ये हड्डिया कभी चलती-फिरती थी, सजीव थी, आखों में सुरमा लगाती थी। ये दांत कभी-कभी अनार के दाने-से खिल पडते थे। ये चूड़िया कभी खनखनाकर, ये साडिया कभी सरसरा कर, ये चोलिया कभी उभर-उभर कर तरुणाई को हूक से भर देती थी।

ये रस्सियो से बाधकर लाई गई थी। खूख्वार पशुओं के दन्त-नखो ने इनकी बोटी-बोटी नोची-खसोटी थी। एक-एक सुकुमार फूल को कई-कई नृशंसों ने कई-कई बार झिझोडा, चीरा-फाडा और वासना की प्यास बुझाकर चाकुओ से छेद-छेद, काट-काटकर फेक दिया था।

जिन कोमल गालो पर लालसा-भरे चुम्बन अकित किए गए, जो पयोधर नव जीवन के लिए अमृत-मुकुल थे, उनपर भूखे बाघ-भेडिये-से टूटकर लहूलुहान करने वाले नृशसो के हृदयो मे क्या रत्ती-भर भी करुणा नही थी ?

अपनी भोग्याओ के साथ तो मासभक्षी पशु भी ऐसी जघन्य क्रूरता नही दिखाते।

इनका अपराध क्या था ? ये आल्ला जी के नाम-जप के साथ आश्चर्य प्रकट करने के लिए 'हाय राम' कह जाती थी। ये नमाज़ पढने के साथ-साथ सीता-सावित्री के गीत गाती थी। अर्थात् ये अपनी धरती के प्राण-रस से जुडी थी, यही इनका अपराध था।

और इस अपराध का दण्ड-विधान उस रात आब्दुल्ला के दल ने किया था।

२०

दोपहर की धूप तेज हो गई थी। खेतो मे पके धान महक रहे थे।

जयचन्द्र का पत्र आया—

"प्राण की चन्द्रा सुनो। मैने फूलमाला के धोखे मे काले साप को गले मे डाल लिया है। अमृत के धोखे मे हलाहल कालकूट पी लिया है। हाय, मैने तुलसी के धोखे मे सेऔरा पेड (भुतैले पेड) की पूजा की है। मुझे जल और वायु मे विष ही विष दिखाई पड रहा है। मै तुम्हारी बाकी नयन-भगिमा केवल एक बार देखना चाहता हूं। मैं बस एक बार तुम्हारी मधुरस-वाणी सुनना चाहता हू। बस, एक बार तुम्हारे लाल-लाल कोमल चरणो को अपने आसुओ से धोना चाहता हू। मैं तुम्हे अन्तिम बार देखना चाहता हू। ससार मे मेरे लिए रचमात्र भी सुख-शान्ति नही है। मैं तुम्हे एक बार देखकर ससार छोड दूगा।"

चन्द्रा ने चिट्ठी बार-बार पढी, वह बार-बार रोई। इतना रोई कि चिट्ठी के अक्षर मिट गए।

"पिता, जयचन्द्र ने मुझे पत्र लिखा है, वह एक तिल के लिए मुझे देखना चाहता है।"

वंशीदास चुप बैठे रहे। चन्द्रा भी शान्त बैठी उनके आदेश की प्रतीक्षा करती रही। वे गंभीर स्वर मे धीरे-धीरे बोले :

"प्राणो की कन्या, जूठे फल से देव-पूजन नही होता। तुम विश्वेश्वर मे अपना मन लगाओ, वही तुम्हे शान्ति देगे। जिस व्यक्ति ने तुम्हारे जीवन मे विष घोल दिया है, उससे भेंट करने का कोई लाभ नही।"

"जैसी आज्ञा।"

"उसे उत्तर अवश्य दे देना।"

जयचन्द्र को सक्षिप्त नकारात्मक उत्तर भेजकर चन्द्रा पुष्प और दूर्वा

लेकर मन्दिर में प्रविष्ट हुई। वह नेत्र मूदकर योगासन पर स्थित होकर फूल और बिल्व से शिव की आराधना मे दत्तचित हुई।

सभी चिन्ताएं दूर हुई, पिता-माता, घर-द्वार, शैशव की स्मृतिया, सभीका विस्मरण हो गया।

ध्यान में रह गए राम और सीता।

...ऊपर चदोवा, नीचे शीतल पाटी। राम-सीता बैठकर पाशा खेलने लगे। सखिया घेरकर बैठ गईं। कोई हवा करने लगी, कोई पान-सुपाडी खिलाने लगी, कोई खिल-खिल हसने लगी। एक बोली, "सुनिए कमल-लोचन, हार जीत होने पर कौन क्या देगा, पहले यह निश्चय कर लो।"

श्रीराम ने कहा, "यदि मैं हारा तो अपनी रत्न-अंगूठी दे दूगा। यदि जानकी हार गई तो बोलो, वे क्या देगी।" सखिया बोली, "वे देगी प्रेम-आलिंगन.."

जानकी हारिले बोलो गो दिबे किबा पण।
सखी गणे बोले दिबे गो प्रेम आलिंगन॥

सीता ने लजाकर सिर नीच कर लिया, मानो पत्ते के भार से चम्पा की कली दब गई हो :

लाजे अधोमुखी गो सीता पडिलेन ढलि।
पत्रेर भारेते यथा गो चम्पकेर कलि॥

राम हार गए, सखियो ने टिटकारी दी। राम ने अंगूठी उतारकर दे दी। सखिया राम का मीठा तिरस्कार कर उठी, पुरुष होकर स्त्री से हार गए।

इस बार सीता हार गईं। राम ने कहा, प्रतिज्ञा-पालन की बात याद है?

सहेलियो ने आड़ कर सीता को राम की गोद में दे दिया। रघुवर उन्हे चूमकर बोले, "तुम्हारी जो इच्छा हो माग लो।"

उन्होने यह भी कहा—"सुख की रजनी बीत रही है। जनकनन्दिनी, सावधानी के साथ वर मांगना।"

राम के सामने सीता धीरे-धीरे बोलीं, "प्रभु, पुण्य तपोवन में घमने

की बहुत दिनों से इच्छा है। मुझे तमसा नदी की बार-बार याद आती है। वहां कमल-वन मे राजहसी क्रीडा करती थी। तमाल की डालो पर मयूर-मयूरी नाचते थे। मै नित्य ही मुनि-कन्याओ को स्वप्न मे देखती हू।"

राम ने चुम्बन लेकर कहा, "आज रत्न-मन्दिर में शयन करो। कल प्रात· तुम्हारी आशा पूरी की जाएगी। तुम्हे लक्ष्मण के साथ वन भेज दूगा।"

भाग्य का दु:ख दूर नही किया जा सकता। हाय जनकनन्दिनी, तुमने क्या वर माग लिया :

> चन्द्रा कहे दैव दु·ख गो ना जाय खण्डानि।
> कि बर मागिले गो हाय जनकनन्दिनी॥

एक ठडी सास, चन्द्रा ने लेखनी रख दी।

क्या आज नीद नही आएगी? सीता-राम पाशा खेल रहे है। सीता हार गई। सखियो ने आड कर दी। राम ने उन्हे गोद मे लेकर चूम लिया। वह सीता का सुख नही पा सकी। छि: छि:, अब वह इस बारे में नहीं सोचेगी। आगे की कथा का अभी से चिन्तन करेगी, जिससे कल सीता का निर्वासन लिखा जा सके। जयचन्द्र आशमानी के साथ पाशा खेलता होगा। अच्छा, जयचन्द्र ने मुझमे क्या अभाव देखा था? क्या मैं ऐसी लता के समान सूखकर मुरझा जाऊंगी, जिसे हरे-भरे उपवन से हटाकर सूखे रेगिस्तान मे आरोपित कर दिया जाए और जो अपने हृदय के माधुर्य तथा अपने हरित रक्त की सृजनशक्ति को फल-फूल मे विकसित किए बिना ही तडप-तडपकर सूख जाए? नहीं-नही, मुझे तो राम-सीता के बारे मे सोचना है। कृत्तिवास ने तो बहुत-कुछ वाल्मीकि के अनुसार लिखा, मै अद्भुत रामायण से प्रेरणा लूगी। जयचन्द्र, मैं तुम्हे कभी शाप नहीं दे सकती, किन्तु तुम्हें क्षमा कैसे कर दू। फिर जयचन्द्र।

चन्द्रा उठ खडी हुई और धीरे-धीरे घूम-घूमकर 'गीत-गोविन्द' का पाठ करने लगी। नीद न आने का कारण केवल चिन्ताएं ही नहीं थी, सभवत: उपवास भी था। चन्द्रा के उपवास बढते जाते थे, शरीर उतना

ही क्षीण होता जा रहा था ।

"ठाकुर, क्या मै हिन्दू हो सकता हू ?"

पडित वशीदास बाउल मिया के इस प्रश्न से चौक उठे ।

"नही मियाजी, ऐसा कोई विधान हमारे यहा नही है । आप अपना धर्म ही मानते रहिए ।"

"तभी तो आप घाटे मे रहते है, नही तो क्या इतने-इतने बगाली आज अपनी धरती के धर्म से दूर जा पडते ।"

"हम भी लोभ या भय दिखाकर धर्म बदलने लग जाते तो हम हिन्दू भी क्रूर हो उठते । हम सहनशील है । हमारे यहा गीता मे कहा गया है—'स्वधर्मे निधन श्रेयः' ।"

"जयचन्द्र को आप वापस स्वीकार करेगे ?"

"नही, कदापि नही ।"

"उसका धर्म तो हिन्दू था, स्वधर्म मे उसका निधन क्यो नही होने देते ?"

"वह धर्म बदल चुका है ।"

"इसका अर्थ यह है कि आप मुसलमान के लिए सहनशील हैं, किन्तु अपने ही जाति-भाई के लिए नही । आप अपने पास दूसरे को नही आने देते और अपने को धक्का मारकर दूसरे के पास फेक देते है ।"

"हमारे धर्म मे शुद्धाचार पर जोर दिया गया है । दूध को मट्ठा बनाया जा सकता है किन्तु मट्ठे को दूध नही । दूध का दूधपन बचा रहे इसके लिए विशेष प्रयास करने पडते है । हम तन और मन दोनो को शुद्ध से शुद्धतर कर अपना विकास चाहते है । इसके लिए हमने कुछ बन्धन बनाए है । उनमें हम स्वय बधकर अपने को कष्ट देते है । हम किसीका क्या बिगाड़ते है ? जो बन्धन न मानकर साधारण जीवन जीना चाहते हैं, वे जिएं । हम उनपर अपने सिद्धान्त नही लादते, वे हमारे ऊपर अपने सिद्धान्त न लादे ।"

"पडित जी, कहने को बहुत कुछ कहा जा सकता है । इस समय तो मैं यही जानना चाहता हू कि जो व्यक्ति हिन्दुत्व को स्वीकार करने के

लिए व्याकुल हो, वह क्या करे। मै क्या करूं ?"

"आप पिरिलि ब्राह्मणो का अनुसरण कर सकते है।"

"उन्होने क्या किया था ?"

"जिन ब्राह्मणो का बलात् धर्मान्तिरण किया गया या किया जा सकता था, वे अग्नि मे जलकर प्राण दे देते थे। पिरिलि ब्राह्मणो ने ऐसा नही किया। बगाल का सुलतान हुसेन शाह शासक बनने से पूर्व एक उदार ब्राह्मण के यहा नौकरी करता था। जब वह सुलतान बन गया तो उसने साथियों के उकसाने पर उस निर्दोप ब्राह्मण को बुलवाकर उसके मुह मे जूठा अन्न ठुसवा दिया। ब्राह्मण अपने समाज से निकाल दिया गया, किन्तु उसने अपने को धर्मान्तरित नही माना। वह सन्यासी बनकर वृन्दावन में जीवन-यापन करने लगा।[1] उसकी वश-परम्परा के लोग पिरिलि ब्राह्मण कहलाते है।"

"ठीक है ठाकुर, मुझे मार्ग मिल गया!"

"यमुना तट का बन्दो रास वृन्दावन···"

बाउल मिया गुनगुनाते-गुनगुनाते चल पडे। वे आशमानी की ओर से निश्चिन्त थे। आशमानी को हीरा-मोती-से पति-पुत्र मिले थे। अब बाउल मिया लडकी के प्रति अपने को बन्धन-मुक्त समझने लगे थे।

अन्धा पोखर में एक नया शव पडा था। सिर से कमर तक का भाग जल में डूबा था, शेष बाहर पडा था। बाहर वाले भाग को चील-कौए नोंच-नोचकर खा रहे थे, जल के भीतर वाले को मछली-कछुए।

२१

लेखन की तल्लीनता का अपना सुख, सब कुछ भुला देने वाली समाधि जैसी स्थिति।

चन्द्रा मन्दिर के कपाट बन्द किए इसी समाधि में लीन थी। कोई था जो मन्दिर के द्वार पर आघात कर रहा था, किन्तु चन्द्रा को सुध

१ देखिए कृत्तिवासी बगला रामायण और मानस, पृष्ठ १२।

नही थी ।

…गर्भवती सीता की सेवा उनकी सखिया कर रही थी । सीता को बार-बार जभाई आती । आखे चचल थी । उनके अग कुछ अवश-से हो गए थे । मुह मे पानी भर आता था ।

कुकुआ ने कहा, "वधू, मेरी बात सुनो । मैने राक्षस नहीं देखा । उसका नाम सुनते ही हृदय काप उठता है । दशमुड रावण को अकित करके दिखाओ ।"

रावण का नाम सुनते ही सीता बेहोश हो गईं । कोई हवा करने लगी । किसीने मुख मे जल दिया । सखियो ने कुकुआ को रोका, "तुम अनुचित बात किसलिए कह रही हो । राजा का आदेश है कि बुरी बात न कही जाए, तथापि तुम ठकुरानी के मन मे व्यथा क्यो दे रही हो ?"

किन्तु कुकुआ ननद नही मानी, वह सीता से बार-बार वही बात पूछती रही ।

सीता ने कहा, "मैने तो उसे कभी नही देखा । मै पापिष्ठ रावण को किस प्रकार अकित करूं ?"

सीता ने बहुत समझाया, किन्तु कुकुआ ने नही छोड़ा । वह मुस्करा-मुस्कराकर बार-बार पूछती ही रही । विष-लता की फल कुकुआ की हसी भी विषैली थी ।

सीता ने कहा, "जिस समय यह दुष्ट मुझे हरकर ले गया, मैंने सागर के जल मे पडी हुई इसकी छाया देखी थी ।"

कुकुआ बैठी हुई थी, वह पलग पर लेटकर फिर सीता से रावण अकित करने का हठ करने लगी । सीता उसे टाल नही सकी । उन्होने पखे पर दशमुड लकेश्वर का चित्र अंकित कर दिया ।

सीता थककर सो गईं । कुकुआ ने ताल-पख उनके वक्ष पर रख दिया ।

कुकुआ कालकूट से भरी काली नागिन थी । यह अभागिन सीता का सुख नही देख सकती थी । यह कुरूप, भद्दी, क्रूर और बातूनी थी । इसे मन्थरा ने सिखा-पढाकर बड़ा किया था । यह कैकेयी-कन्या भरत

से छोटी थी। राजा के घर मे इसका विवाह हुआ था। सास-ससुर इसकी आंखो में चुभते थे। मुहल्ले के लोग इसे निन्दुक और कन्दली (निन्दा करने वाली और झगडालू) कहते थे।

यह हवा से लडती थी। स्वामी को औषध खिलाकर इसने पागल कर दिया था। देवर-जेठ को घर से खदेड़ देती। दूसरे का कलक घर-घर गाती फिरती। कौतुक करने के लिए यह स्वामी-स्त्री मे झगडा करा देती।

(संभवत· रामायण लिखते समय चन्द्रा के मन मे माछरागा का चरित्र था। मन्दिर के द्वार पर फिर कोई आघात हुआ किन्तु चन्द्रा की तल्लीनता नही टूटी।)

सधवा होकर भी कुकुआ कार्य-दोष से राड थी। दस वर्षो से वह बाप के घर मे थी। राम-सीता का सुख उसका हृदय सह नही पाता। उसके हृदय मे विष की धार थी, किन्तु वह बाते हसकर करती थी।

रामचन्द्र रत्न-सिंहासन पर बैठे थे। काली नागिन के समान सासे लेती हुई कुकुआ राम के सामने जा खडी हुई। उसके नेत्रो मे अग्नि थी, वह जल्दी-जल्दी सासे ले रही थी। वह गर्जन-तर्जन कर कह रही थी :

"सुनो दादा, तुम्हे बता रही हू। पाप की बात कहते हुए मुह से नही निकलती। तुम्हारे लिए सीता ही ध्यान, सीता ही ज्ञान और सीता ही चिन्तामणि है। तुम्हारे लिए जनक-नन्दिनी प्राणो से भी बढकर है।···रूपसी देखकर स्वय डूब गए और रघुवश को कलक लगाने के लिए सीता को ले आए। एक-दो नही पूरे दस मास तक तुम्हारी सीता रावण के पास रही। रावण की बात करने पर सीता के नेत्रो से धार बहने लगती है। दादा, तुम्हारी नयनतारा मुह मोडकर रोने लगती है। तुम दुनियादारी नही समझते, सरल हो। तुमने अमृत समझकर गरल पी लिया है।[१]···चाडाल का छुआ फूल पूजा मे नही लगता। कुत्ते का

---

१ रूपसी देखिया दादा गो आपनि मजले।
रघुबशे कालि दिते गो सीता रे आनिले ॥
एक नय दुइ नय गो पूर्ण दश मास।
आछिलो तोमार सीता गो राबणेर पाश ॥

जुठाया अन्न लोग खाया नही करते ।[1] दादा, विश्वास न करते हो तो चलकर देख लो, तुम्हारी सीता रावण को वक्ष पर धारण कर सो रही है ।"

विष-बाण राम के हृदय मे समा गया । वे उन्मत्त हो उठे । क्रोध से उनकी आखे रक्तजवा के फूल-सी लाल हो गई । नथुने फडक उठे । कुकुआ ने जो आग जला दी थी, उससे सीता राम के साथ जलकर नष्ट होगी । कुछ दिन बाद अयोध्यानगरी भी जल जाएगी । सारा राज्य लक्ष्मी-शून्य होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा ।

दूसरे की बात पर कान देने से अपना सर्वनाश होता है । चन्द्रावती कह रही है कि राम की बुद्धि नष्ट हो गई :

परेर कथा काने लइले गो निजेर सर्ब्बनाश ।
चन्द्राबती कहे रामेर गो बुद्धि हइले नाश ।।

·· लेखनी रुक गई । सीता की व्यथा को चन्द्रा ने अधिक अच्छी तरह समझा था । दु ख की अतिशयता ने ही लेखनी रोक दी । चन्द्रा मन्दिर के फर्श पर माथा रखे देर तक लेटी रही । फर्श पर आसुओ का ढेर इकट्ठा होकर धीरे-धीरे बहने लगा था ।

अचल से आसू पोछकर वह उठ खडी हुई । उसने निश्चय किया कि रामायण का शेष भाग कल लिखेगी । जानकीवल्लभ भूखा बैठा होगा । अपनी बुआ की गोद मे बैठकर ही वह भात के दाने चुगता था ।

बोलिले राबणेर कथा गो सीतार चक्षे बहे धारा ।
मुख फिराइया कान्दे दादा गो, तोमार नयनतारा ।।
ससार ना बूझो दादा गो, तुमि त सरल ।
अमृत भाबिया दादा गो, पिइले गरल ।।

१. चण्डाले छुइले फुल गो ना लागे पूजाय ।
कुकुरेर उच्छिष्ट अन्न गो लोके नाहि खाय ।।

२२

जयचन्द्र को देखते ही आब्दुल्ला की आखो की कोरो मे बिजली तडप जाती और खेल जाती अधरो पर एक विप-बुझी कुटिल मुस्कान। वह दाढी पर हाथ फेरकर व्यग्यपूर्वक खखार कर झूम-झूमकर चलता। कमर मे बधे खजर पर बडे आत्म-विश्वास के साथ हाथ फेरता जाता।

किन्तु जयचन्द्र के लिए अब आब्दुल्ला का कोई अस्तित्व नही रह गया था। वह मन ही मन इस परिवेश से अपने को सर्वथा असलग्न पाता। जब इस परिवेश के प्रति उसके मन मे आत्मीयता नही थी, तो मान-अपमान का प्रश्न ही नही उठता था।

अब उसे चन्द्रा के दारुण दु.ख की अनुभूति हो रही थी। वह एक-एक पल भयानक दशो का अनुभव कर रहा था। उसने अक्षम्य अपराध किया है। चन्द्रा के साथ उसने जो भयकर विश्वासघात किया है, उसका प्रतिकार सौ-सौ जन्म नरक मे पडकर भी नही हो सकता। उसे जीवन-धारण की कोई सार्थकता प्रतीत नही हो रही थी। इस कलंकित पशु-जीवन को लेकर वह क्या करे, किसके लिए जिए ? एक सुखमय भविष्य को वह जड से काट चुका है।

अन्धा पोखर के पास आकर आब्दुल्ला अट्टहास कर उठा :

"यमुना तट का बन्दो रास-वृन्दावन—ह ह ह, अन्धा पोखर मामा का वृन्दावन बन गया।"

ठीक कहता है आब्दुल्ला। रसालु बाग्ला देश का वृन्दावन रसालु बाग्ला में ही बना।

किन्तु चील-कौए, मछली-कछुए मामा को नही नोंच रहे है, एक उदार समन्वयात्मक संस्कृति को नोच रहे है।

यह भविष्य ही बताएगा कि बाउल मिया की जीत होती है या आब्दुल्ला की।

साकल तोडकर आए पागल के समान जयचन्द्र दौडा आया।

"चन्द्रा, मन्दिर के किवाड खोल दो।"

वह किवाडो पर सिर पटकने लगा, अपनी छाती पर मुट्ठिया मारने लगा।

रामायण-रचना मे तल्लीन चन्द्रा को कुछ भी सुनाई नही पडा। जयचन्द्र ने असहाय होकर चारो ओर देखा, वह फिर उच्च स्वर मे चिल्लाया :

"चन्द्रावती, द्वार खोल दो। मैं तुम्हे छुऊगा नही, दूर से खडे रहकर देखूगा। तुम देवपूजा की फूल हो, तुम गगा का पवित्र जल हो। मै तुम्हे छूकर कलकित नही करूंगा। मै केवल एक बार तुम्हारे बचपन की नयन-भगिमा जी-भर देखकर सदा के लिए विदा लेने आया हू।"

चन्द्रा की लेखन-समाधि भग नही हुई। उसकी लेखनी अबाध गति से चल रही थी। उसके हृदय की व्यथा, उसके नयन के आसू कागज पर अकित होते चले जा रहे थे।

एक आधी बाहर चल रही थी और एक आधी जयचन्द्र के भीतर। उसने असहाय होकर चारो ओर देखा। सन्ध्या-मालती के फूल खिले थे। उसने उन्हे तोडकर किवाडो पर लिखा :

"बचपन की सखी, यौवन की सहचरी चन्द्रा, अपराध क्षमा करना। तुमने मुझे पापी समझकर दर्शन नही दिए। अब मैं जन्म-भर के लिए विदा माग रहा हू।"[1]

चन्द्रा ने किवाड खोलते ही मसले हुए फूल धरती पर पडे देखे। उसने पलटकर किवाडो की ओर देखा। लिपि पढी। ब्रह्माण्ड घूम-सा गया। वह लडखडाई। सिर मे चक्कर-सा आ रहा था। उसने आखे बन्द कर ली। दीवाल का सहारा लेकर थोडी देर वह खडी रही।

कलसी लेकर वह नदी की ओर चली कि जल लाकर मन्दिर को

---

१. शैशब कालेर सगी तुमि यौबन कालेर साथी।
अपराध क्षमा कर तुमि चन्द्राबती॥
पापिष्ठ जानिया मोरे ना हइला सम्मत।
बिदाय मागि चन्द्राबती जनमेर मत॥

धोया जा सके। आखो से पानी बहने लगा। जिसके चरणों को पलको से बुहारती, आसुओ से धोती, केशो से पोछती, जो मेरी आखो का काजल और माथे का सिन्दूर होता, वही अभागा आज मेरे लिए अस्पृश्य और विधर्मी हो गया है। उसके स्पर्श के दोष को दूर करने के लिए मन्दिर धोना पडेगा।

घाट सूना पड़ा था। नदी मे ज्वार आ रहा था। आकाश मे चीले मडरा रही थी। एक शव उल्टी धार की ओर तैरता हुआ आ रहा था। मानो नदी की तरगो पर पूनो का चन्द्रमा तैर रहा हो।

हाथ से कलसी छूट पडी और चन्द्रा धडाम से धरती पर गिर पडी।

जब आंख खुली तो अपने को बडी बौदी की गोद मे पाया। बड़ी बौदी के आसू चन्द्रा के माथे पर चू पडे। सामने दोनो दादा, पिता और छोटी बौदी थी। जानकीवल्लभ सिसक रहा था, "पिसीमा, पिसीमा।"

चन्द्रा ने उठकर जानकीवल्लभ को गोद में ले लिया और अपना अचल सभालती हुई घर के भीतर चली गई।

जानकीवल्लभ बुआ की गोद का आश्रय पाकर बोला, "पिसीमा, मै अब अगूठा नही चूसता।"

किन्तु एक क्षण के पश्चात् ही दाहिने हाथ का अगूठा मुह की ओर बढने लगा था।

एक ताजी बनी कब्र पर पागलो-सी लोटती एक स्त्री, "सोआमी, मुझे क्षमा कर दो।"

पास ही छोटा बच्चा ककड़ो से खेल रहा था।

२३

आज चन्द्रा ने फूल नही तोड़े, आज चन्द्रा ने पूजा नही की। क्या बात है, कहा है चन्द्रा ?

पडित वशीदास खोजते हुए आगन की ओर चले। रसोई के पीछे

खडे कदम्ब-वृक्ष से पीठ सटाए पद्मासन लगाए बैठी थी चन्द्रा । उसके नेत्र अपलक थे। वशीदास चौक उठे । माथे पर हाथ रखा, एकदम शीतल ।

वंशीदास चीखकर गिर पडे ।

फूलेश्वरी के तट पर चिता जल रही थी । पातुआरी ही नही आस-पास के गावो के अनेक नर-नारी एकत्र थे—माझी, मछुए, ग्वाले, किसान, मजदूर, ब्राह्मण, शूद्र सभी वर्गों के ।

आज उनके बीच से चन्द्रा नही स्वय सीता ही चली जा रही थी । सीता के पाताल-प्रवेश का दृश्य क्या ऐसा ही करुणाजनक नही रहा होगा ? चन्द्रा के गीत गरीब जनता के घावों पर शीतल प्रलेप करते थे। भोली आखो की उसकी पवित्र चितवन, उसका सुशीतल गंभीर व्यक्तित्व स्वय मे एक बहुत बडा आश्वासन था। आज गरीब जनता अनाथ हो गई थी। एक मा, एक बडी बहिन, एक शातिदात्री, एक जन-कवयित्री, एक निस्पृह लोक-सेविका उनके मध्य नही थी ।

था केवल उष्ण भस्म का अम्बार और उस पवित्र आत्मा की भस्म ले जाने के लिए उमडता हुआ जन-समुदाय ।

केनाराम ने खोल (मृदंग) फाडकर फेंक दिया। जब साक्खात् पद्मा—बेटी चन्द्रा नही रही तो किसके गीत गाऊगा ।

पडित वशीदास छोटी-सी पोटली लेकर घर से काफी दूर चले आए थे। साथ मे केनाराम था। मार्ग मे आम के पेड के नीचे कोई स्त्री खडी दिखाई दी। उसकी गोद मे साल-डेढ साल का बच्चा था। स्त्री ने आगे आकर प्रणाम किया ।

"कौन हो तुम ?"

"बाबा" स्त्री ने मुह ऊपर उठाया। उसकी लम्बी बरौनियो मे आसू उलझे हुए थे ।

"कौन हो, बताया नही ?"

"आपकी बेटी चन्द्रा हूं।"

"अभागिन चन्द्रा तो चली गई।"

"अभागिन नहीं, देवी चन्द्रा चली गई। अभागिन और पापिन तो आपके सामने खड़ी है।"

"क्या तुम आशमानी हो ?"

"हां, कभी थी।"

"क्या चाहती हो ?"

"आप कहां जा रहे है ?"

"वृन्दावन।"

"मुझे पहले ही पता था, बाबा। मुझे भी साथ ले लो। तीर्थ में भीख मांगती पडी रहूंगी।"

"किन्तु···"

"किन्तु-परन्तु नही बाबा। यहां मेरा कोई नही है। आब्दुल्ला जैसे लोग मेरे शरीर की बोटी-बोटी नोच खाएंगे। मेरी रक्षा करने वाला कोई नही है। मेरे बाबा भी तो शायद वृन्दावन ही गए हैं।"

"सामान ?"

"बस, थोडे-से चावल और एक-दो गहने साथ लाई हूं।"

"बच्चे का नाम क्या है ?"

"चन्द्र मोहम्मद, अब केवल चन्द्र।"

"चन्द्र मोहम्मद ?"

"जी, उन्होने ही यह नाम रखा था।"

"चलो।"

चन्द्रावती के पास सामान के नाम पर बास की एक पिटारी थी। श्रीवल्लभ ने उसे खोल डाला। एक ओर पुरानी फटी साडी रखी थी, दूसरी ओर दो बस्ते थे। एक बस्ते में चन्द्रावती द्वारा लिखी दो पोथिया थी—'दस्यु केनाराम का पाला' और 'मलुआ सुन्दरी।' दूसरे बस्ते में 'रामायण' थी।

श्रीवल्लभ ने रामायण का अन्तिम पृष्ठ खोला। यह अपूर्ण थी।

उसने ठंडी सास ली, "लडकी इसे पूरा नही कर सकी ।"

पुरानी साडी हटाते ही एक जोडा शाखा और सिन्दूर निकल आए। श्रीवल्लभ को मालूम न था कि विवाह के तीन-चार दिन पूर्व ही जयचन्द्र ने माल्लो के द्वारा ये वस्तुएं चन्द्रा के पास भेजी थी।

श्रीवल्लभ नदी के तट पर गया। उसने साडी, शाखा और सिन्दूर को नदी मे प्रवाहित कर दिया, ठीक उसी स्थान पर जहा चन्द्रा की भस्म प्रवाहित की गई थी।

वह भारी स्वर मे बुदबुदाया—"मेरी दुखिया बहिन चली गई। उसके लिखे गीत जन-जन मे गूजेगे। मै उसके ग्रन्थो की प्रतिलिपिया तैयार करूंगा। फूलेश्वरी नदी का तट, उसका आकाश, उसका वातास चन्द्रा के गीतो से सदा-सदा के लिए मुखरित रहेगा।"

अतिरिक्त शब्द

स्वर्गीय श्री दीनेश चन्द्र सेन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से कई खण्डो में 'पूर्व बग-गीतिका' एव 'मयमनसिंह-गीतिका' का प्रकाशन कराया था। इनमे आज के बाग्ला देश के कई गाथा-गीतो (बैलेड्स) का समावेश है। बाग्ला देश के 'सामान्य किसानो आदि के घरो से पाए गए ये गाथा-गीत अभूतपूर्व है। इनका प्रचार हिन्दू-मुसलमान सभीमे था।

इनमे एक नयनचांद प्रणीत 'चन्द्रावती-चरित' भी है, जिसमे चन्द्रावती के असफल प्रेम की कथा है। चन्द्रावती के पिता प० वशीदास भट्टाचार्य ऐतिहासिक व्यक्ति है, उनकी एक पुस्तक 'मनमा-मगल' (पद्मा-पुराण) के नाम से ख्यात है। यह छप चुकी है। इसके रचना-काल के सम्बन्ध मे विवाद है। १६वी शती की समाप्ति से १८वी शती के आरंभ तक इसका रचनाकाल माना जाता है। चन्द्रावती ने भी इस ग्रन्थ की रचना मे पिता की सहायता की थी।

'दस्यु केनारामेर पाला' तो चन्द्रावती का है ही, सेन महाशय 'मलुआ सुन्दरी' गाथा-गीत को भी चन्द्रावती कृत मानते है। चन्द्रावती ने पाला-गान को दृष्टि मे रखकर इनकी रचना की थी। इन सभी कृतियो को साहित्यिक कृति समझने की भूल नही करनी चाहिए। चन्द्रावती सस्कृत की पंडिता थीं, किन्तु उन्होंने सर्वसामान्य जनता के लिए रचना की थी। उनकी रामायण मयमनसिंह जिला की नारियों के मध्य मगल-अवसरों पर आज तक गाई जाती है।

ये सभी रचनाएं मौखिक रूप से प्रचारित थी। लोकमुख से ही इनका संग्रह हुआ है। यह नही कहा जा सकता कि इनका रूप अविकृत है।

चन्द्रावती के एक पूर्वज चक्रपाणि राढ़ देश से आकर ब्रह्मपुत्र के तट पर बस गए थे। इनका वंश-परिचय इस प्रकार दिया जाता है :
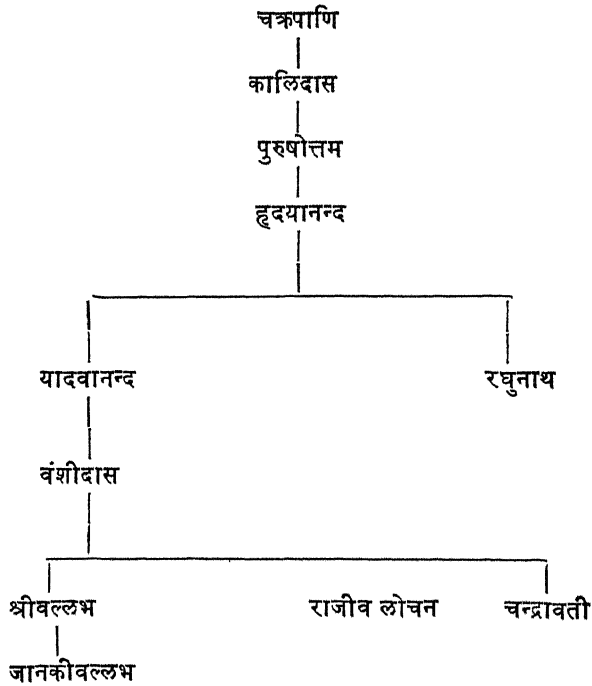
कहा जाता है कि आज भी वंशीदास के वंशधर पातुआरी ग्राम मे रहते है। पाकिस्तानियो के राक्षसी अत्याचार से बचे हो तो शायद वे आज भी मिल जाएं।

केनाराम का घर बाकुलिया ग्राम मे था। मयमनसिंह के किशोरगंज से ६ मील पूर्व-दक्षिण में जालियार हाओर के जगल में वंशीदास से इसकी भेंट हुई थी।

वंशीदास का पातुआरी गाव भी किशोरगंज के पास स्थित है। अपनी कन्या के लिए वंशीदास ने फूलेश्वरी नदी के तट पर शिवमन्दिर की स्थापना कराई थी। श्री दीनेशचन्द्र सेन के मतानुसार यह आज भी जीर्ण अवस्था मे है।

चन्द्रावती के बाल-सखा और प्रणयी जयचन्द्र ने ठीक विवाह के दिन किसी अन्य कन्या के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर धर्म-परिवर्तन कर लिया था। चन्द्रावती ने आजन्म कौमार्य-व्रत धारण कर रामायण-रचना मे अपने को दत्तचित्त किया। एक दिन जयचन्द्र अपनी भूल की अनुभूति कर लौट आया और प्रायश्चित रूप मे उसने जल-समाधि ले ली। चन्द्रावती को इस घटना का भी आघात सहना पडा। वे अपनी रामायण पूरी नही कर सकी।

प्रस्तुत उपन्यास में इन चार गाथा-गीतो का आधार लेकर कथा का ताना-बाना गूथा गया है ·

(१) नयनचाद प्रणीत 'चन्द्रावती-चरित'
(२) चन्द्रावती कृत 'रामायण'
(३) 'दस्यु केनारामेर पाला'
(४) 'मलुआ सुन्दरी'

अपने कथ्य की पुष्टि अथवा अभीष्ट परिवेश की सृष्टि के लिए मैंने लोकगीतो के अनुवाद देकर पाद-टिप्पणी मे मूल बाग्ला गीत दे दिए है। कही-कही शब्द-प्रति शब्द अनुवाद है, कही थोडा हेर-फेर भी है। और यह आवश्यक न समझा जाए कि चन्द्रावती से सम्बन्धित पालागान से ही ये गीत लिए गए है। प्रीति-प्रकाशन अथवा हिन्दू-मुस्लिम के सास्कृतिक ऐक्य की सिद्धि के लिए कुछ छन्द अन्यतोऽपि लिए गए है (महुआ, श्याम रायेर पाला, बाउल गान आदि)।

बाग्ला देश मे भयकर सघर्ष हो चुका है। उदारतावादी और कट्टर-पन्थी लोगो के मध्य ऐसा सघर्ष बगाल मे ही नही अनेक देश-प्रदेशो मे होता रहा है। इस ऐतिहासिक कृति मे इसकी भी थोडी-बहुत झलक मिल जाएगी। किन्तु केवल बाग्ला देश की समस्या से ही इसे आबद्ध न किया जाए। यह कथा मेरे मन मे बहुत दिनो से घुमड रही थी। इसका सकेत मेरे प्रथम उपन्यास 'योगमाया' मे मिल जाएगा। 'चन्द्रावती' पर मेरे कई लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे आज से लगभग २० वर्ष पहले से ही प्रकाशित हो रहे है।

जिन बन्धुओ ने इस उपन्यास के लिखने मे प्रेरणा दी अथवा जिन्होने

इसकी पाण्डुलिपि पढकर मुझे प्रोत्साहित किया, अथवा जो अन्य भाषाओ मे इसके अनुवाद का प्रयास कर रहे है, उन सबका आभार सहित नामोल्लेख मात्र कर रहा हूं—डा० विष्णुकान्त शास्त्री, डा० सत्यपाल चुघ, डा० सत्यदेव चौधरी, डा० उमापतिराय चन्देल, डा० खगेश्वर महापात्र, डा० एस० विनोदाचार्य, डा० इन्दिरा गोस्वामी (मामनि रायसम गोस्वामी) और श्रीमती शकुन्तला शुक्ल। आचार्य कमला रत्नम् जी ने 'सरस्वती' (जुलाई ७३) मे इस उपन्यास पर विस्तृत समीक्षा लिखकर मुझे अनुगृहीत किया है। इस कृति का धारावाहिक प्रकाशन दक्षिण के प्रसिद्ध पाक्षिक 'युगप्रभात' मे हुआ, सम्पादक श्री के० रवि वर्मा के प्रति मैं कृतज्ञता-प्रकाश करता हू।

हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

—**रमानाथ त्रिपाठी**

पुनश्च : पुस्तक समाप्त करते-करते मुझे बाग्ला देश के वृद्ध क्रातिकारी श्री क्षितीश चन्द्र मौलिक की पुस्तक 'प्राचीन पूर्वबग-गीतिका' उपलब्ध हो गई। श्री दीनेशचन्द्र सेन ने गाथागीतो का सग्रह दूसरो से कराया था और मौलिकजी ने स्वय घूम-घूमकर इनका संग्रह किया। अतः श्री मौलिक द्वारा संगृहीत ये गाथागीत अधिक प्रामाणिक और पूर्ण है। मैंने इनका भी उपयोग यत्र-तत्र कर लिया।

दीनेशजी के सग्रह मे मुस्लिम कन्या का नाम नही दिया गया था। यह भी स्पष्ट नही था कि जयचन्द्र ने स्वतः धर्मान्तरण किया था अथवा धर्मान्तरण बलात् कराया गया था।

मौलिकजी के सग्रह मे लडकी का नाम 'आशमानि' बताया गया है। उसका बाप बडा क्रूर काजी था। 'आशमानि' ने जयचन्द्र के विवाह के दिन उसका पत्र अपने बाप को दिखाया। बाप ने बलात् धर्मान्तरण कराया। किन्तु मैं आशमानी के पिता को क्रूर नही दिखा सका, क्योकि उसे बांग्ला देश के उदारतावादी मुसलमानो का प्रतीक पात्र बनाना था, इसके लिए मैंने आशमानी के फुफेरे भाई आब्दुल्ला की सृष्टि की जो कट्टर-

पंथियों अथवा आज के क्रूर पाकिस्तानियो का प्रतिनिधित्व करता है।

जयचन्द्र का नाम जयानन्द और जयन्त भी बताया गया है, मैंने जयचन्द्र चुना।

मलुआ पातुआरी ग्राम के पास आडालिया गांव की थी। वह शायद चन्द्रावती से पहले हो गई होगी। मेरी मालो मलुआ का ही अवतार है।

मौलिक महाशय १९३५ ई० मे पातुआरी गाव गए थे। यह स्थान फूलेश्वरी नदी के तीर से कुछ हटकर निर्जन स्थान मे है। तब गांव वालो ने बताया था कि जाग्रत देवस्थान समझकर इसके निकट कोई घर नही बनाता। श्री दीनेशचन्द्र सेन के आग्रह पर १९४२ ई० में शिव-मन्दिर का जीर्णोद्धार जनता द्वारा कर दिया गया था।

मौलिक महाशय ने मुझे जो पत्र लिखा, उसके एक अंश का हिन्दी-अनुवाद यहा उद्धृत कर देना चाहता हू।

"मैमनसिंह जिले के पातुरी ग्राम मे मै अन्तिम बार गया था १९५५ ई० के फरवरी मास मे, इसके पश्चात् फिर नही गया, क्योकि यह स्थान पाकिस्तान के अन्तर्गत है। १९७१ ई० के २५ मार्च तक पूर्व बगाल के बंगाली मुसलमान भी हिन्दुओ को दुश्मन मानते थे। इस प्रकार की अवस्था मे हिन्दू-सस्कृति स्वाधीन इस्लामिक राष्ट्र मे अब तक टिकी हुई है अथवा नही, मै नही जानता।"

श्री मौलिकजी के ग्रन्थ से मुझे दो विशेष शब्दों की टिप्पणियां प्राप्त हो गई। मैने पश्चिमी बंगाल और बाग्ला देश के विद्वानों से कौडा पक्षी के विषय मे पूछताछ की थी, कोई भी नही बता सका कि कौडा पक्षी कैसा था। मौलिक जी लिखते है—

"पूर्वबंग मे कुडा अथवा कौडा नामक एक जाति का पक्षी। यह जलाशय के निकट वन मे रहता है। कुडा का मास धनी मुसलमानो का प्रिय खाद्य है। उस काल मे जीवित कुडा पकडकर देने से मुसलमान अमीर-उमरा शिकारी को प्रचुर मूल्य देते थे।" (पृष्ठ १०५)

नजर मरिचा के सम्बन्ध मे उनका कहना है—

"ईसा की तेरहवी शताब्दी मे भारत-सम्राट् अलाउद्दीन खिलजी ने प्रजा के शासन के लिए अरब देश से कई मुसलमान कानून-विशेषज्ञो को

बुलाया था। उन्होंने जो कानून-व्यवस्था बनाई उसमें मेरचा कानून के अनुसार अमुसलमानो को कन्या और पुत्र के विवाह के समय सरकार को नजर देकर अनुमति लेनी होती थी। नजरे-बेवा कानून मे अमुसलमान प्रजा की किसी नारी के निःसंतान अवस्था मे विधवा होने पर उसे स्वामी अथवा पिता के घर रखने के लिए वार्षिक कर अर्थात् नजर सरकारी कोष मे देनी होती थी। इन दोनों नजरो के देय अर्थ का परिमाण निर्दिष्ट नही था। परगना के दीवान अथवा काज़ी अपनी इच्छा के अनुसार नजर वसूल कर सकते थे। अमुसलमान प्रजा यदि इस नजर का रुपया देने मे असमर्थ होती, तो उसकी सम्पति जब्त कर ली जाती, अथवा कन्या या वधू का अपहरण कर दीवान की हवेली मे चालान कर दिया जाता था।

"···इन दोनो कानूनों के कवल से सुन्दरी कन्या और वधू को बचाने के लिए तत्काल हिन्दू-समाज मे शिशु कन्या का विवाह कर 'गौरी-दान का पुण्य सचय' और 'सती-दाह' प्रथा का प्रवर्तन हुआ। किन्तु 'सहमरण' और 'सती-दाह' एकार्थक अथवा एक बात नही है। हिन्दुओ के प्राचीन शास्त्र मे 'सती-दाह' शब्द ही नही है, है 'सहमरण' अथवा इसी तात्पर्य का शब्द। सहमरण-व्यवस्था शास्त्रीय विधि-निषेध द्वारा इतनी सीमाबद्ध है कि कदाचित् कोई स्त्री इस विषय मे स्मार्त्त पडित और समाजपति की अनुमति पाती। सतीदाह-प्रथा नजर-ए-बेवा कानून की प्रतिक्रिया है।"—पृष्ठ ९२-९३

● ● ●